

डॉ. पूरनचंद टंडन

अनुवाद-सिद्धांत : कविताओं के आलोक में

कोई भी अनुवाद-सिद्धांत किसी न किसी सामान्य भाषिक सिद्धांत पर अवश्य निर्धारित होता है। यों अनुवाद, भाषा प्रयोग संबंधी या कहें कि प्रयोजनमूलक भाषा संबंधी एक ऐसी प्रक्रिया है जिसकी एक खास तरह की परिणति तो होती ही है, उसके फलस्वरूप मूल और निष्पत्ति में 'मूल्यवत्ता' की दृष्टि से समानता का एक संबंध भी स्थापित हो जाता है। अतः अनुवाद के मूल में दो भाषाओं के प्रयोगमूलक तुलनात्मक प्रश्न विराजमान रहते हैं जो विषय को केंद्र में रखकर समानता-असमानता का एक त्रिकोणीय संबंध स्थापित करते हैं। समानता-असमानता का यही संबंध स्रोत और लक्ष्य भाषा के समानांतर चलता है।

यों साहित्य के रस, छंद, अलंकार, बिंब, प्रतीक, शब्दशक्ति एवं मिथक आदि बहुत से काव्यांगों के अपने-अपने सिद्धांत और मापदंड हैं पर फिर भी, वे परस्पर सूत्रबद्ध होकर रचना या कृति के परिप्रेक्ष्य में एक निष्कर्षात्मक धारणा के चरण बनते हैं। अनुवाद में भी विषय, भाषा, साहित्यांग एवं संस्कृति-परिवेश के परिप्रेक्ष्य में बहुत से सिद्धांतों-मानदंडों और विचारधाराओं को देखा जा सकता है। विविध अनुवादविदों ने अपने अथक अभ्यास एवं प्रयासों से, अपनी अनुभूतियों के सघन-वन से निकलते हुए उन्हें, 'मूल अभिव्यक्ति की निकटतम सृष्टि' बनाने का प्रयास किया है। इसे अनुवाद-प्रक्रिया, निष्पत्ति तथा सममूल्यता के रूप में भी देखा जा सकता है।

पिछले कुछ समय से अनुवाद-सिद्धांत एवं व्यवहार संबंधी इन मौलिक तथा निजी अनुभूतियों ने बहुत से अनुवादकर्मियों एवं कवि-विचारकों को भी उद्वेलित किया है। यह विवाद आज भी विद्यमान है कि मुर्गी पहले बनी या अंडा। अतः अनुवाद-चिंतकों की काव्य प्रतिभा से उद्भासित अनुवाद विषयक कविताओं में यह खोजना कि कौन से सिद्धांत अथवा मानदंड के आधार पर किस कविता का सृजन हुआ है, इतना अपेक्षित

नहीं जितना यह जानना आवश्यक है कि अनुवाद-सिद्धांत संबंधी चिंतन-परंपरा को इन विचार-कविताओं ने क्या और कितना दिया है?

कविता के माध्यम से सिद्धांत-विवेचन की एक सुदीर्घ परंपरा भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में सहज ही देखी जा सकती है। संस्कृत साहित्य में साहित्य-सिद्धांतों को सूत्रों में पिरोकर प्रस्तुत करने की एक लंबी परंपरा है। इस दृष्टि से अनुवाद संबंधी इन विवेचनों को विश्लेषित करने की यह सूत्रवत् परंपरा श्लाघनीय तो है ही, उपयोगी भी है। सूत्र-निर्माण के सभी कारण तथा लाभ इसके भी मूल में निहित हैं। सर्वप्रथम, कुछ काव्य पंक्तियाँ बानगी के तौर पर दृष्टव्य हैं :

अनुवाद --
ऐसी प्रक्रिया मन की
...समानधर्मा हो गए
हम दोनों।¹

-- एक भाषा का दूसरी भाषा में रूपांतर
बंजर भूमि पर
उपजाऊ मिट्टी का पलस्तर।²

-- स्वीकारता हूँ मैं
कि हर बार
तुम्हारे और मेरे बीच
एक दरार का अस्तित्व
बना ही रहा था।³

रेत से / तेल निकालने-सा / दुश्वार
दुधारी तलवार पर / चलने-सा खतरनाक।⁴

अनुवाद-चिंतन विषयक कविताओं की तथा लयात्मक सूत्रों की यह परंपरा भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य-संसार में काफी पुरानी है। 'शब्दकल्पद्रुम' के अनुसार 'भाष्य' की परिभाषा इस प्रकार है :

सूत्रस्थं पदमादाय पदैः सूत्रानुसारिभिः।

स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्य विदो विदुः।⁵

इस काव्यात्मक सूत्र में स्पष्ट किया गया है कि सूत्र में स्थित पदों को लेकर सूत्रों के अनुसार ही पदों (शब्दों) में जब वर्णन किया जाता है तो उसे 'भाष्य' कहते

हैं। यहाँ भाष्य और अनुवाद के साम्य-वैषम्य का प्रश्न एक भिन्न स्थिति है; किंतु अगर 'मूल अभिव्यक्ति की निकटतम सृष्टि' (क्रोचे) को अनुवाद माना जा सकता है, निकटस्थ, समीपस्थ अथवा समरूपता जैसे शब्दों को स्वीकृत किया जा सकता है तो भाष्य, उल्था अथवा इसी प्रकार के अन्य शब्दों को क्यों नहीं?

अनुवाद की परंपरा हिंदी साहित्य के मध्य युग में भी उपलब्ध रही। रीतिकाल में तो बहुत से संस्कृत साहित्य का ब्रजभाषा में अनुवाद किया भी गया। वहाँ भी आचार्य कवि सोमनाथ ने अनुवाद को अन्य समकालीन कवियों की तरह 'भाषा' कहकर ही काव्यबद्ध किया :

कही बहादुर सिंह ने, एक दिना सुख पाई।

सोमनाथ या ग्रंथ की, भाषा देह बनाइ।⁶

सोमनाथ ने 'वाल्मीकि रामायण' के सुंदर कांड एवं किष्किंधा कांड, 'अध्यात्म रामायण के बालकांड (अधूरा) एवं भवभूति के 'मालती-माधव' नाटक के क्रमशः 'रामचरित रत्नाकर', 'रामकलाधर' एवं 'माधव-विनोद' नाम से ब्रजभाषा में काव्यात्मक अनुवाद भी किए हैं। इनके द्वारा किए गए तीन अनुवाद-ग्रंथ भी उपलब्ध हैं। अतः भक्तिकाल एवं रीतिकाल में बहुत से कवि-आचार्यों ने संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद करते हुए उसे 'भाषा' कहकर ही पुकारा।

आधुनिक काल में जब साहित्य-भाषा खड़ी बोली का सदल-बल प्रवेश हो रहा था तो भी अनुवाद की महत्ता और उसकी सैद्धांतिक उपयोगिता का बखान कविता के माध्यम से जारी था। भारतेंदु युग आधुनिक भारतीय नवजागरण का प्रणेता-युग माना जाता है। उस समय भारतेंदु ने स्वयं सामाजिक बदलाव में अनुवाद की भूमिका और उसके महत्त्व को काव्यात्मक शैली में इस प्रकार प्रस्तुत किया था :

पै सब विद्या की कहूँ होय जु पै अनुवाद।

निज भाषा में तौ सबै या कौ लैहें स्वाद।।

जानि सकैं सब कुछ सबहिं विविध कला के भेद।

बनै वस्तु कल की इतै मिटै दीनता खेद।।⁷

अनुवाद के सिद्धांत कभी भी उसके उद्देश्य को अनदेखा कर स्थाई अथवा प्रामाणिक नहीं बन सकते। भारतेंदु ने उसे समाजोन्मुख तथा 'लोक-प्रयोग-प्रामाणिक' बनाते हुए उसकी उपादेयता को इन काव्य-पंक्तियों से सत्यापित किया। सार्वभौमिक आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को सर्व-सुलभ, केवल अनुवाद ही करा सकता है। इसी के माध्यम से वे 'निज भाषा' को अनेक विषयों के ज्ञान तथा भाषाओं के शब्द भंडार से संपन्न बनाने का स्वप्न देख रहे थे।

वास्तव में शब्द-संस्कार, शब्द की निजी पहचान, अर्थ-गांभीर्य तथा उसकी भावगर्भिता को समझते-जानते हुए ही भारतेन्दु ने कहा था :

अंग्रेजी अरु फ़ारसी, अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने ज्ञान के लूटत लागहु देर।।
सबको सार निकारि के पुस्तक रचहु बनाइ।
छोटी बड़ी अनेक विधि विविध विषय की लाई।।⁸

जहाँ जौन जो गुन लाख्यौ लियो तहाँ सों तौन।
ताही सों अंग्रेज अब सब विद्या के भौन।।
पढ़ि विदेशी भाषा लहत सकल बुद्धि कौ स्वाद।
पै कृत कृत्य न होत ये बिन कछु करि अनुवाद।।⁹

इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक भाषा एवं प्रत्येक भाषिक उपकरण की अपनी एक संस्कृति और अपना एक परिवेश होता है जिसे अनुवाद कर दूसरे परिवेश में यथावत् ढालना कठिन ही नहीं असंभव भी होता है। यही कारण है कि अनुवाद चिंतक विवश होकर कह उठता है :

मेरे लिए नहीं था संभव
चयन कर सकूँ, वैसे ही शब्द, वैसे ही छंद
गूँज उठे जिनसे वैसी ही आवाज़।।¹⁰

शब्द होते संस्कार
निजता ही उनकी पहचान
थोपा नहीं जा सकता उन्हें
संस्कार स्वतः निर्मित
नहीं होते रूपांतरित
और अनुवादेय, कदापि नहीं।
यथावत् समता
वह भी संस्कारों की
असंभव।।¹¹

संस्कृत में कहा भी गया कि लोक अथवा समाज द्वारा किसी विशेष शब्द का जिस अर्थ में प्रयोग किया जाता है वही अर्थ उस शब्द का सिद्ध अथवा प्रामाणिक अर्थ बन जाता है और फिर प्रयोग के बाद शास्त्र द्वारा उसी शब्दार्थ को मान्यता दे दी जाती है :

सिद्धे शब्दार्थे लोकतः अर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे ।

शास्त्रेण धर्मनियमः यथा लौकिकः वैदिकेषु ।¹²

कहा जाता है कि अच्छा कहा जाने वाला अनुवाद मूलाधृत नवीन सृष्टि है जिसका कलाकृति के रूप में मौलिक महत्त्व होता है। जॉन ड्राइडन ने सृजन और अनुसृजन के परिप्रेक्ष्य में अनुवाद को तीन श्रेणियों के अंतर्गत रखा है -- (1) अविकल अनुवाद, अर्थात् किसी लेखक का शब्द-प्रति-शब्द और पंक्ति प्रति-पंक्ति अनुवाद, (2) पदान्वय अर्थात् (व्याख्यात्मक अनुवाद) जिसमें अनुवादक मूल लेखक को दृष्टि में रखते हुए भी थोड़ी छूट ले लेता है और इसमें शब्दार्थ की रक्षा भले ही पूरी निष्ठा से न हो सके, भाव की पूरी-पूरी रक्षा की जाती है; तथा (3) अनुकरण जिसमें अनुवादक शब्द और भाव परिवर्तन करने की ही छूट नहीं लेता; अवसरानुसार उसे त्याग भी देता है।

हिंदी में 'Nor word for word too faithfully translate' के लिए कहा जाता है :

शब्द प्रति शब्द का बन कर दासा,

मत कर अनुवाद को तू उबासा ।

मूलनिष्ठता के प्रति अति मोह दरअसल अंधविश्वास का ही परिणाम है। यही कारण है कि अनुवादक अपनी उड़ान को कटा हुआ महसूस करने लगता है। डॉ. ओमप्रकाश सिंहल की यह कविता देखिए :

और मैं

कहाँ जी पाया तुम्हारे शब्दों को

तुम्हारे परिवेश में रहकर

शब्दकोश अक्सर बीच में ही काट देते

मेरी सारी उड़ान ।

तुम ही बताओ

कैसे उतारूँ

तुम्हारे आकाश को

अपने आकाश में ।¹³

काव्य के माध्यम से दोहरे जोखिम की सैद्धांतिक यात्रा को सफलतापूर्वक तय करने का प्रशंसनीय प्रयास भी किया जा सकता है, यह अनुवाद के सिद्धांत-विवेचन संबंधी इन विविध कविताओं से सिद्ध हो जाता है। अनुवाद के व्यावहारिक एवं सृजनात्मक दौर से गुजर कर उसकी दोहरी चुनौती-भरी यात्रा को, तकलीफ, यातना और हताशा के कगार से निकलकर विजयोन्माद में बदलने के ये काव्यात्मक प्रयास पाठकों के भीतर

सोए कवि को झकझोर कर जगा देते हैं। बच्चे को जन्म देकर भी सौतेली माँ कहलाने और समझे जाने का दर्द इन कवि-अनुवादकों की संघर्षशील-अनुभूति में उसकी विडंबनात्मक-अभिव्यक्ति में सहज ही देखा जा सकता है।¹⁴

मूल लेखक तथा अनुवादक एवं मूल कृति तथा अनूदित कृति के बीच खड़ी ऊँची एवं दुरूह दीवारों को लाँघने और इस प्रक्रिया से गुजरने में क्षत-विक्षत होने की निरंतर पीड़ा को शब्द देती इस सुरीली तथा लयात्मक काव्य-यात्रा में खाइयों का-सा गहरा दर्द है तो काँटों की-सी नुकीली चुभन भी है। निहत्थे अनुवादक की यह पीड़ा कुछ-कुछ वैसी ही है जैसी पंख कटे पखेरु की होती है। शब्दों की अदालत में और अनुवाद के कटघरे में खड़ा अनुवादक जब-जब अपनी गीतामयी-आत्मा पर हाथ रखकर समतुल्यता की शपथ लेने लगता है तभी उसकी श्वास उखड़ने और लड़खड़ाने लगती है। मूल कृति के भीतरी संवेग मचल उठते हैं और अनुवादक भाषा के चौखटे में खामोश खड़ा रह जाता है। निरपराध-अपराधी का-सा बोध उसे समझाता है कि “अँधेरे साए में उजाला आ नहीं सकता है और भीतर के सत्य को अनुवाद की भाषा में पूरी सच्चाई-ईमानदारी के साथ यथावत् ढाला जा नहीं सकता।”

सर जॉन डैन्हम की अनुवाद विषयक प्रसिद्ध कविता का यह अनूदित कथन भी इसी तथ्य को प्रमाणित करता है :

शब्द-दासता नहीं कभी भी होती अच्छी
शब्द बदल कर रख देने से
बुझ जाती है आग मूल की
रह जाता अनुवाद हमेशा ढेर राख का।¹⁵

परिणामतः ‘शब्द-प्रतिशब्द’ की यात्रा तय करके भी अनुवादक ‘आत्मा’ को पकड़ने में पूरी तरह असह्य हो उठता है। जबकि अनुवाद मात्र भाषांतर नहीं, मन को जोड़ने का और अजनबीपन तोड़ने का एक साधन है। ‘अनुवाद’ पत्रिका में प्रकाशित डॉ. महेंद्र भटनागर की यह कविता अनुवाद के इसी लक्ष्य को इंगित करती है :

अनुवाद --
साधन है
देशांतरों के व्यक्तियों के बीच निर्मित
अतल गहराइयों में
पैठने का,
निःशंक हो
द्विविधा रहित

मिल बैठने का ।
अनुवाद
मात्र भाषांतर नहीं
वह सेतु है ।¹⁶

माना जाता है कि अनुवाद एक सेतु है और अनुवादक एक छोर से दूसरे छोर तक मूल पाठ को पहुँचाने वाला श्रमिक-वाहक । पहले छोर की संस्कृति, हवा, परिवेश, गंध और अनुवादक का अपना व्यक्तित्व -- उस दूसरे छोर के परिवेश, वहाँ की गंध एवं सांस्कृतिक प्रवहमान धारा में घुल-मिलकर भी अपनी कुछ पहचान अवश्य रखते हैं । दरअसल यह दो संस्कृतियों, परिवेशों और भाषाओं के बीच का प्यारा-संवाद ही भिन्न को अभिन्न बनाने का सूत्र बनता है, अपरिचित को परिचित बनाने का प्रयास करता है :

भाषा की सौंदर्य चेतना
दर्शाता अनुवाद है ।
दो भाषाओं से आपस का
यह प्यारा संवाद है ।¹⁷

अनुवाद वास्तव में जितना श्रम-साध्य एवं दुष्कर कार्य है उतना ही स्फूर्ति-प्रद एवं रचनात्मक-अनुभूति का कारण भी है । मूल कवि या लेखक की कृति अथवा रचना की भाव-भूमिका तक पहुँचाने का सफर जितनी थकान, निराशा, मायूसी और हताशा प्रदान करता है मूल-अनुभूति से तादात्म्य स्थापित कर साधारणीकृत होने की अतृप्त-तृप्ति उस समग्र थकान को धोकर 'परकाया प्रवेश' का सुख देती है । अनुवादक अपने यायावरी सफर के शब्दों के बियावान जंगल से गुजरता-भटकता, लू में तपता और धूल फाँकता, बारिश में भीगता और नदी के साथ बहता हुआ मूल कृति की भाव-योजना को अपने श्रम-साध्य स्वर-लहरियों का आत्मिक आवरण पहनाकर रूपायित करता है ।¹⁸ उसका यह प्रयास किसी तप या साधना से कम नहीं होता ।¹⁹ उसका विश्वास है कि शब्दों की तलवारमयी-पगडंडी पर लगातार चलने का यह साहस और अभ्यास ही अर्थों को पीछे चले आने पर मजबूर कर देगा । इसलिए वह नजर के धागे को लगातार पिरोते रहने पर बल देता है ।²⁰ यही दीवानगी अनुवादक की डगर को कठिन से सरल बनाती है ।²¹

कहा जाता है कि अनुवादक का आदर्श मूल लेखक होता है । ठीक वैसे ही, जैसे सहृदय का साधारणीकरण सृजक से होता है तभी वह कृति का रसास्वादन कर पाता है । Roscommon ने भी यही महसूस किया और कहा :

Your author always will give the best advise
Fall when he falls, and when he rises rise.²²

अनुवादक, दरअसल जी-तोड़ परिश्रम, अथक-साधना तथा तप करके भी अपनी यात्रा को सफल तो मानता है, सफलतम नहीं मान पाता। वह अनुवाद को दुष्कर कार्य मानता है :

गुजरना बीहड़ जंगल से
खड़े होना लपलपाते अलाव के सामने
झोंकना स्वयं को, दहकती भट्टी में।²³

तभी तो उसे छोटी-सी भूल भी बहुत महँगी पड़ती है और वह मूल के शब्दों से या तो बहुत आगे निकल आता है और या पीछे छूट जाता है :

छोटी-सी भूल ने
ढाया कहर
अनुवाद के दौरान
पीछे छूट गया
शब्दा का नैहर।²⁴

Roscommon ने कहा था कि अनुवादक जब तक मूल लेखक से साधारणीकृत होकर तादात्म्य स्थापित नहीं करता, उसके साथ चढ़ता-उतरता या गिरता-बहता नहीं, उसके कथ्य-सागर में उतरना-डूबता नहीं तब तक वह कृति का रसास्वादन नहीं कर सकता। डॉ. हरिवंश राय बच्चन ने भी 'उमर खैयाम' की रुबाइयतों में डूबकर, उतरकर, पैठकर तथा अपने को उसी में विलीन कर ये उद्गार व्यक्त किए :

तुम्हारी मदिरा से जिस रोज़ हुए थे सिंचित मेरे प्राण
उसी दिन मेरे मुख की बात हुई थी अंतरतम की तान।²⁵

'अनुवाद' की विडंबना है कि वह विरासत में मिली अनेक विडंबनाओं के साथ व्यवसायियों के हाथों का खिलौना बनता जा रहा है। 'अनुवाद' तो 'कोल्हू के बैल की तरह जुटने'²⁶ बड़े-बड़े हादसों को अपने स्तर पर जीने, स्वयं को कोंचने, बीघने और रेत से तेल निकालने तथा दुधारी तलवार पर चलने के समान है :

यह लख्ते ज़िगर है मेरे दोस्त।
जिसे सींचना पड़ता है
खूने ज़िगर से,
तन से, मन से।²⁷

अनुवाद 'बिन प्रतिभा के लिखत तथा जाँचत विवेक बिन' (जगन्नाथदास रत्नाकर) जैसे लोगों का कार्य नहीं। यह तो प्रतिभा संपन्न, श्रद्धावनत, दत्त-चित्त तथा स्वयं को समर्पित कर साधनारत रहने वाले जवाँ-पथिक का कार्य है। हरिवंश राय बच्चन की ये

पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं जहाँ वे विलियम बटलर ईट्स को संबोधित कर कवि-अनुवादक का विनत धर्म तो निभाते ही हैं, अनुवादक सहकर्मियों और सहयात्रियों को अनुवाद के प्रति नतशीश होकर अनुवाद-प्रक्रिया के विविध चरणों का दस्तावेजी ब्यौरा भी दे देते हैं :

काव्य-सिंधु में उतर तुम्हारे मैंने तह को खूब थहाया,
मोती जो दो चार निकाले, यह माँझी का फर्ज बजाया,
इनको जग परखे, मेरा तो सुख सबसे बढ़ कर था,
उसकी चिर-चंचल, वर्तुल लहरों से क्रीड़ा की, विलसा, मनमानी।
मैं नतशीश तुम्हारे आगे, आयर के शायर अभिमानी।²⁸

यह ठीक है कि अनुवादक 'बहुत कुछ' अनुवाद कर ही नहीं सकता। यह शब्दों के चिराग से धुँध में लिपटे शहर को ढूँढ़ने का प्रयास तो करता है परंतु चुनौती हर बार 'अंगद का पैर' बनकर या 'रावण की नाभि' बनकर उसे त्रस्त करती है। यही कारण है कि वह कह उठता है :

Such is our pride, our folly or our fate
That few but such as cannot write, translate.

(Sir John Danham to Sir R. Fanshaw)

अनुवाद की उपादेयता आज सार्वभौमिक है। यही कारण है कि इसकी आज लगातार माँग बढ़ रही है। अनुवाद-विषय को कविता के माध्यम से विवेचित करने वाली दो पुस्तकें -- 'अनुवाद के रंग' तथा 'अनुवाद से संवाद' इसी तथ्य का परिणाम हैं। पहली पुस्तक डॉ. ओमप्रकाश सिंहल द्वारा संपादित है, जिसमें बारह कवि-अनुवादकों एवं चिंतकों की 72 रचनाएँ संकलित हैं। दूसरी पुस्तक, डॉ. सिंहल की मौलिक कृति है। इनके अतिरिक्त अन्य कई कविताएँ भी समय-समय पर 'अनुवाद' पत्रिका में अथवा अन्यत्र प्रकाश में आती रही हैं। इन कृतियों में कवि-चिंतकों ने शब्द-तलाश की पीड़ा, संदर्भ, भाषिक-प्रकृति एवं संबद्ध सांस्कृतिक-पौराणिक प्रसंगों की विवशता को भी शब्द देने का प्रयास किया है। रंगों को देखने तथा स्वरो के हमसफर होने वाले ये आत्मीय-संवाद इन कवियों के भोगे हुए सत्य हैं। साहित्यकार की 'शब्दों से क्रीड़ा करने की प्रवृत्ति' अनुवादक को दोहरी समस्या में उलझाती है। पर अनुवाद विश्व साहित्य की 'सृजनात्मक उपलब्धियों से आत्मीय रिश्ता' स्थापित कर उसे जग के सामने पुनः रूपायित करता है। परिणामतः नूतन शब्दों के समावेश से शब्द-संपदा बढ़ती है और भाषा की अर्थवत्ता विस्तार पाती है। अन्यान्य भाषाओं के शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण करती भाषा अपरिचित से परिचित बनती चली जाती है। यही सब तथ्य हैं जिन्हें ध्यान में रखते हुए सन् 1905 में 'सरस्वती' के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'ग्रंथकारों से विनय' करते हुए यह अनुनय-आग्रह किया था :

इंग्लिश का ग्रंथ-समूह बहुत भारी है,
 अति विस्तृत जलधि समान देहधारी है।
 संस्कृत भी इसके लिए सौख्यकारी है,
 उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है।
 इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजै,
 हिंदी अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।²⁸

इस संदर्भ में श्रीमती संतोष खन्ना ने अपनी कविता में इस रूप में उभारा है
 -- 'अनुवाद एक दर्पण है / मानवीय अंतर्मन का / एक पूर्ण बिंब / विश्वास मानस
 का / अनुवाद एक मंत्र है / 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का / अनुवाद एक सृजन है /
 संतति जनन-सा।³⁰

उर्दू भाषा को व्यापक बनाने के संदर्भ में भी यही बात यों कही गई है :

दौड़ के सीख लीजिए, गुर है अदाकारी का यह।
 जिससे मिले जहाँ मिले। जो मिले और जब मिले।।

यह ज्ञानार्जन इसलिए भी जरूरी है कि हम अपने 'कर्म' के संप्रदाय को फैला
 सकें। डॉ. निर्दोष यही कहते हैं -- "ताकि तुम / जन-जन के नायक बनकर / अपने
 'कर्म' के 'संप्रदाय' को / अग-जग तक / प्रेषित कर सको।"³¹

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के फरवरी 1918 के संपादकीय में
 'उत्तम पुस्तक के हिंदी अनुवाद की आवश्यकता' में कहा था -- "किसी कारण से जो
 लोग अच्छी पुस्तकों के हिंदी अनुवादकों को हीन दृष्टि से देखते हैं वे हिंदी के मित्र
 नहीं, शत्रु हैं। आज तक हिंदी में कितने ग्रंथ तैयार हुए? जो हुए भी है उनका महत्त्व
 कितना है... जिस हिंदी के लेखकों में अभी तक अच्छे-अच्छे दस-पाँच अनुवादक भी
 नहीं दिखाई देते उसमें नए और मौलिक ग्रंथों के लिखने वाले कहाँ से आवेंगे... एक
 ही अच्छी पुस्तक का अनुवाद पचास नई, पर निःसार पुस्तकों की अपेक्षा महत्त्व रखता
 है... अतएव प्रलापियों के प्रलाप की परवाह न करके संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, मराठी
 और गुजराती आदि भाषाओं के उपयोगी ग्रंथों का अनुवाद करके हमें हिंदी का साहित्य
 उन्नत करने में जरा भी संकोच न करना चाहिए।"

राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद द्वारा दिए गए अभिनंदन का आभार व्यक्त करते हुए राष्ट्र-कवि
 मैथिलीशरण गुप्त जी ने जो कविता पढ़ी थी, उसमें भी अनुवाद की इसी आवश्यकता
 पर बल देते हुए कहा था :

सज्जनों, भगीरथ प्रयत्न फलें आपके,
 ले आ सकते हैं यहाँ गंगा से प्रवाह जो।

आप अनुवाद की ही योजनाएँ कर दें
तो कह सकें हम सगर्व -- विश्व भर के
वाङ्मय में जो है वह चुन लिया हमने
और जो हमारा अपना है, अतिरिक्त है।

अनुवादक को अनुवाद-प्रक्रिया के तहत यह ध्यान रखना होता है कि अनुवाद मात्र भाषांतर होकर न रह जाए। मात्र भाषांतरण से अनुवाद की आत्मा विकृत हो जाएगी और अनुवादक की प्रतिष्ठा भी दाँव पर लग जाएगी। शब्दों की ध्वनि, उनकी अर्थवान शक्ति और उसकी छायाएँ अनुवादक को शब्द तराशने, छाँटने, गढ़ने और जड़ने का काम दे देती हैं। परिणामतः अनुवादक 'महायात्री' बनकर 'आँधी-पानी का सामना' करता हुआ शब्द शोधक बनता है³² और शब्दों को संसार-सागर की लहरों पर छोड़ देता है।³³ अतः अनुवादक मूल लेखक से अधिक जोखिम भरी यात्रा करता है। यही कारण है कि निराशा उसे क्षण-भर को घेरती तो है :

In the Beginning was the word,
Here am I balked: who can help afford?
The Word? impossible so high to rate it,
And otherwise must I translate it.³⁴

उसकी सच्चाई, निष्ठा, तपस्या तथा 'नैरंतर्य-साधना' के बावजूद उसका मनोबल ऐसी उक्तियाँ सुनकर टूटता जान पड़ता है :

That servile path thou nobly dost decline,
Of tracing word by word, and line by line.
A new and nobler way thou dost persue,
To make translations and translators too.
They but preserve the ashes, thou the flame,
True to his sense, but truer to his fame.

(Sir Danham to Sir R. Fanshaw)

अतः देश-काल की सीमाओं को तोड़ते अनुवादकों तथा उनके शब्दों को जर्मन के 'ह्यूगो वान हाफमान्स्थल' की (धर्मवीर भारती द्वारा अनूदित) कविता के ये भाव संबोधित करते हुए कहते हैं :

भाषा उग आई है तुम्हारे अधरों पर
साथ-साथ, उग आई है तुम्हारे हाथों में एक शृंखला
खींचो! उससे तमाम जगत को अपनी ओर खींचो
वरना तुम बेबस खींच लिए जाओगे।³⁵

कविता के माध्यम से अनुवाद और अनुवादक की पूरी दुनिया को उकेर कर रख देना तथा कुछ ही शब्दों में पूरे के पूरे दृश्य को रूपायित कर देना कवि अनुवादक

की दहकती विचार-प्रक्रिया का ही परिणाम कहा जा सकता है। कविता का आवेग कवि की कल्पना से चालित होता है। अनुवादक की अनुवाद-क्षमता उसके धैर्य तथा संकल्प से चालित होती है। तभी वह मूल की परत-दर-परत अर्थ खोलने की अदम्य जिज्ञासा, लालसा तथा इच्छाशक्ति लिए जुटा रहता है। तभी वह इस मूलभूत सत्य का स्रोत खोज पाता है कि शब्द हिंदू-मुसलमान या ईसाई नहीं धर्म-निरपेक्ष होते हैं³⁶ परंतु उन धर्म-निरपेक्ष शब्दों की सार्वभौमिक परिभाषा को वह नहीं तलाश पाता। यही विडंबना उसके अनुवादपरक राष्ट्रीय अथवा अंतर्राष्ट्रीय एकत्व के स्वप्न को छिन्न-भिन्न कर देती है। वह शब्दों में या शब्द-समूहों से अनेक वार्ताएँ स्थापित कर इस अनेकत्व-बोध को धोने, भाषिक-अंतराल को मिटाने तथा पृथक पहचान के भ्रम को भुलाने का अर्थ प्रयास करता है, परंतु शब्द और विचारों की राजनीति इस गुथी को सुलझने ही नहीं देती। विश्व-बंधुत्व का पाठ उसे बार-बार प्रेरित करता है। वह 'महायात्री' बनकर इस अंतहीन यात्रा को बिना पीछे मुड़े अथवा देखे फिर शुरू कर देता है।³⁷ उसका दृढ़ संकल्प, उत्साह तथा साहस ही 'अनुवाद राष्ट्र' के निर्माण की भूमिका बनाता है और देश-काल की सीमाओं को तोड़कर जन-जन को समय की आवाज तथा दृष्टि की डोर से बाँधना चाहता है।

आज अनुवाद और अनुवादक को क्रमशः 'भाषा' और 'शृंखला' के इस दायित्व का पूरी ईमानदारी से निर्वाह करना होगा वरना पूरे जगत को अपनी ओर खींचने की क्षमता रखने वाली यह विधा स्वयं ही खिंच जाएगी। अनुवाद के सिद्धांत प्रयोग-विमुख होकर सूख जाएँगे। जड़वत् हो जाएँगे। पूरे संसार के परिप्रेक्ष्य में आज देखें तो कवि केदारनाथ सिंह का यह कथन व्यावहारिक नहीं लगता :

उचित यही होगा
कि हम शुरू में ही
आमने-सामने
बिना दुभाषिए के
सीधे उस सुगंध से
बातचीत करें।³⁸

बिना 'दुभाषिए' के 'विश्व-मैत्री' का स्वप्न अधूरा रह जाएगा। समान-धर्मा होकर अपनी आत्मा के सौंदर्य से अखिल विश्व के साहित्य और साहित्यकार, समाज, संस्कृति एवं आचार और विचारों के शृंगार का स्वप्न अपूर्ण रह जाएगा। किंतु आस्था कहती है कि :

विश्वास है एक दिन
पृथ्वी से अंकुरित भाईचारे की

सह अनुभूति का
शब्द-प्रताप
सूरज अनुवाद का
सवेरा लाएगा।³⁹

बेशक! अनुवादक अपने दायित्व की प्रक्रिया में अपने वजूद को भुरभुराता हुआ महसूस करता है। शब्दों के सागर-ज्वार में हर क्षण टूटते, बिखरते तथा बह जाते भावों का अनुभव करता है।⁴⁰ फिर भी वह काफिले के साथ चलते रहकर जानी-अनजानी आँखों पर और देखे-सुने कानों पर दस्तक देकर आशा के द्वार खुलवाना चाहता है।⁴¹ शब्दों की उर्वरा शक्ति की खाद बनाकर पूरे विश्व में बिखेर देने तथा धानी-आँचल के लहरा उठने का स्वप्न देखता है।⁴² शब्दों से निरंतर गुफ्तगू करते रहने की कामना करता है।⁴³ उनके पंख फड़फड़ाकर अपनी ही दुनिया में उन्मुक्त उड़ान भरने की कामना करते हैं। वह मानता है कि शब्दों को सीमाओं में समेटना उन्हें बेजान करना है।⁴⁴ शब्दों की नई प्रतिमाएँ गढ़ना ही सच्चे अनुवादक का धर्म है। उसका मानना है कि शब्द उधार की जिंदगी नहीं जीते।⁴⁵ प्रत्येक शब्द अपने भीतर एक सूर्य की ऊर्जा लिए रहता है। इसलिए अगर शब्द जुटाने हैं तो रचना के मूल भाव को दिमाग में दर्ज करना जरूरी है⁴⁶, उन्हें बनावटी आवरण पहनाना आवश्यक नहीं। उसे अपने मुहावरे में ढाल लेना कहीं बेहतर है। अनुवाद तो खुली हवा का मदमस्त जादू है।⁴⁷ यह तो 'पर-संवेदनाओं' को 'स्व-तन' में उगाने की कला है। भाषागत संपुटों को तोड़कर मानवीय संवेदनाओं के मोतियों को खोजने का भगीरथ यत्न है। अतः अनुवाद की विडंबनाओं से घबराकर अथवा हारकर बैठ जाना 'अनुवाद पौरुष' नहीं। 'अभ्यास की रसरी' विडंबना-रूपी सिल पर भी निशान अवश्य बना देगी। शब्द-संगीत की स्वर लहरियाँ कानों में निरंतर घोलती रहेंगी तो जिह्वा पर भी एक न एक दिन 'माँ-सरस्वती' अवश्य विराजेंगी। अतः निष्कर्ष रूप से अनुवादक-कवि ओमप्रकाश सिंहल के स्वर में यही कहा जाना चाहिए :

सब कुछ भूल कर बैठ जाओ
शब्दों की महफिल में
सुनते रहो संगीत
कभी उतर आएगा तुम्हारे भी कंठ में वही स्वर।⁴⁸

□

संदर्भ

1. प्रो. सुरेशचंद्र गुप्त, 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 70

2. डॉ. सतीश कुमार भार्गव, वही; पृष्ठ 84
3. डॉ. रवींद्रनाथ दरगन, वही; पृष्ठ 56
4. डॉ. सुंदरलाल कथूरिया, वही; पृष्ठ 66
5. शब्दकल्पद्रुम, तृतीय खंड, पृष्ठ 509
6. सोमनाथ ग्रंथावली, प्रथम खंड, पृष्ठ 320
- 7-9. भारतेंदु समग्र, संपादन : हेमंत शर्मा, पृष्ठ 229, 230, 229
10. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 51
11. डॉ. पूरनचंद टंडन, 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 38
12. महाभाष्य, पतंजलि से उद्धृत
- 13-15. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 17, 15, 19
- 16-17. देखिए, 'अनुवाद' पत्रिका का अंक
- 18-21. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 14, 20, 34, 42
22. Roscommon : Essay on translated verse
- 23-24. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 60, 62
25. आरती और अंगारे, पृष्ठ 65
26. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 41
27. डॉ. सुंदरलाल कथूरिया, 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 67
28. आरती और अंगारे, पृष्ठ 67
29. सरस्वती, फरवरी 1905, 'ग्रंथकारों से विनय' शीर्षक कविता
30. देखिए, 'अनुवाद' पत्रिका का अंक
31. 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 43
- 32-33. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 16, 18
34. Dryden and the Art of Translation, 1916, by William Fraser
35. देखिए, 'अनुवाद' पत्रिका का अंक
- 36-37. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 57, 16
38. 'एक छोटा-सा अनुरोध' कविता से
39. डॉ. देवराज पथिक, 'अनुवाद के रंग', पृष्ठ 35
- 40-48. डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, 'अनुवाद से संवाद', पृष्ठ 15, 18, 18, 20, 25, 26, 46, 52

ज़ाग्निड हरबर्ट
अनु. : केदारनाथ सिंह

कविता का अनुवाद

एक अनाड़ी भौरे की तरह
वह जाकर बैठ जाता है फूल पर
कोमल डंठल झुक जाता है
नीचे की ओर
पँखुड़ियों के बीच जो कि होती है
शब्दकोश के पन्नों की तरह
वह बना लेता है अपना रास्ता
और पहुँचने की कोशिश करता है वहाँ
जहाँ छिपी रहती है गंध और मिठास
और हालाँकि वह खा गया है ठंड
और उसने खो दी है अपनी स्वाद की चेतना
लेकिन फिर भी वह उस दुराचार से
तब त बाज़ नहीं आता
जब तक उसका सिर
पीले पुष्परज से टकरा नहीं जाता।

और यहाँ खत्म होता है सारा खेल
क्योंकि असल में कोई पहुँच ही नहीं सकता
एक फूल की पँखुड़ियों से
उसकी जड़ों के पास तक
इसलिए भौरा निकल आता है बाहर
दर्प के साथ गुंजार करता हुआ
मानो घोषित करता हुआ
कि वह फल के अंदर से आ रहा है
और वे जो उस पर विश्वास नहीं करते
वह उन्हें दिखाता है अपनी नाक
जिस पर लगा होता है
पराग का पीला धब्बा!

□

Marin Sorescu

Translation

I was sitting an exam.
In a dead language.
And I had to translate myself
From man into ape.

I played it cool.
First translating a text
From a forest.

But the translation got harder
As I drew nearer to myself.
With some effort
I found, however, satisfactory equivalents
For nails and the hair on the feet

Around the knees.
I started to stammer.
Towards the heart my hand began to shake.
And blotted the paper with light.
Still, I tried to patch it up
with the hair or the chest.
But utterly failed.
At the soul.

□

अनुवाद-1

डॉ. ओमप्रकाश सिंहल

अनुवाद

मैं खुद बैठा था परीक्षा में
मुझे अनुवाद करनी थी
एक मृत भाषा
ढालना था स्वयं को
वन मानुष में।
मैंने शुरुआत की
ठंडे दिल से
अनुवाद करना शुरू किया
मूल पाठ को उसके जंगल से
और ज्यों-ज्यों
मैं पहुँचता गया नजदीक
अपनी आत्मा के
कठिनतर होता गया अनुवाद करना।
नाखून और पैरों पर उगे बालों के लिए
मिलते गए संतोषजनक पर्याय
मैं हकलाने लगा
घुटनों तक पहुँचते-पहुँचते
काँपने लगे मेरे हाथ
दिल तक पहुँचने पर
और पूरा कागज
हो उठा झक सफेद।
फिर भी कोशिश नहीं छोड़ी मैंने
छाती पर उगे बालों तक
पर आत्मा पकड़ने में
हो उठा / पूरी तरह असमर्थ।

□

अनुवाद-2

कृष्णगोपाल अग्रवाल

अनुवाद

हुआ ऐसा कि मैं निष्प्राण
भाषा में परीक्षा दे रहा था,
स्वयं को था ढालना
नर से वानर रूप में।
सहजता से कर गया अनुवाद
पहले, जंगलों के पाठ का
पर लगा दुस्तर मुझे
ज्यों-ज्यों हुआ मैं निकट निज के।
पग, बाल, नख सम्यक
समानक हो सके उपलभ्य
कुछ आयास कर।
लेकिन लगा मैं डगमगाने
जानु के परिक्षेत्र में;
और जब आया हृदय की ओर
मेरी लेखनी जड़ हो गई
और उतना अंश कोरा रह गया।
फिर भी, किया
प्रयास पूरा हो सके रूपांतर
वक्ष के रोए बनाकर।
किंतु जब मैं आत्मा के पास आया
अनुवाद उसका एकदम
असाध्य पाया।

□

अनुवाद-3

सरला जगमोहन

अनुवाद

मैं एक मृत-भाषा से
परीक्षा देने बैठा
और इसके लिए
मुझे परिवर्तित होकर
मानव से वानर बनना पड़ा।

शांत मन से आरंभ किया,
पहले तो मूल पाठ का,
जो एक जंगल था,
अनुवाद किया।

लेकिन जैसे मैं अपने करीब आया
तो अनुवाद कठिन महसूस हुआ।
हाँ, कुछ कोशिश की तो
नाखून और पैरों के बाल के
संतोषजनक पर्याय मुझे मिल गए।
घुटने तक पहुँच
मैं कुछ हिचकिचाने लगा,
और दिल की बात आई तो
मेरा हाथ थरथराने लगा,
और कागज पर प्रकाश का
मैंने दाग लगा दिया।
फिर भी, छाती के बालों से
मैं उसकी जोड़जाड़ करता रहा
लेकिन आत्मा तक आते ही
बिल्कुल ही पस्त हो गया।

□

402 : काव्यानुवाद

अनुवाद-4

डॉ. नीलिमा सिंह

अनुवाद

थोड़ा-सा प्रयास किया
और जैसे-तैसे
मुझे वनमानुष के पंजे पर स्थित
नाखूनों और बालों के
संतोषजनक पर्याय
मिल गए,
किंतु घुटनों तक आया
कि मेरे शब्द अटकने लगे
हृदय की हृद पर
हथेली काँप गई
और कागज पर
रोशनी का चकत्ता छलक आया —
फिर भी
कोशिश करता रहा
कि वक्ष पर उगे बालों के
उल्लेख से काम चला लूँ
अंत में
आत्मा पर पहुँचा
और बुरी तरह
परास्त हो गया मैं।

□

मूल एक : अनुवाद अनेक

संकलन : डॉ. कुलभूषण शर्मा

उदाहरण -- 1

आं कस्र कि बहराम दर-ऊ जाम गिरिफ्त,
बाहू बचा कर्द-वो शेर आराम गिरिफ्त,
बहराम कि गोर मी गिरिफ् ते हमः उम्र
कि निगर कि चिगुना गोर बहराम गिरिफ्त।
(उमर खैयाम)

अंग्रेजी अनुवाद They say the Lion and the Lizard keep
The Courts where Jamshyd gloried and drank deep;
And Bahram that great Hunter, --the Wild Ass
Stamps o'er his Head, and he lies fast asleep.
(Fitzgerald, Quatrain17)

हिंदी अनुवाद (1) जहाँ था जमशेदी दरबार,
शान से होता था मधुपान,
वहाँ स्वच्छंद घूमते सिंह,
वहाँ निर्भीक थूकते श्वान।
और, वह बादशाह बहराम,
अहेरी जो था जग-विख्यात,
पड़ा निद्रा में आज अचेत
गधे की सिर पर खाता लात।
(हरिवंशराय बच्चन)

हिंदी अनुवाद (2) जहाँ शाह जमशेद-विभव था,
बही जहाँ मदिरा लहरी,

काव्यानुवाद : 403

बने आज उन राजगृहों के
सिंह-शृगालादिक प्रहरी।
उस बहराम गोर के सिर पर,
जो मशहूर अहेरी था,
टाप गोर-खर चला रहा है,
पर है नींद वही गहरी।

(मैथिलीशरण गुप्त)

उदाहरण - 2

गर दस्त दिहद जे मज़-र-गन्दुम नाने
वज़ में दोमने जे गोस्पन्दे राने
वांगह मन-ओ-तू निशस्ता दर वीराने
ऐसे बुवद आं न हद-र-हर सुलताने।

(उमर खैयाम, रुबाई सं. 691)

अंग्रेजी अनुवाद

Here with a Loaf of Bread beneath the Bough,
A Flask of Wine, a book of Verse - and Thou
Beside me singing in the Wilderness -
And Wilderness is Paradise enow.

(Fitzgerald, Quatrain XI)

हिंदी अनुवाद (1)

इस तरू तले कहीं खाने को
रोटी का टुकड़ा हो एक,
पीने को मधु पात्र पूर्ण हो,
करने को हो काव्य विवेक,
तिस पर इस सन्नाटे में तुम
बैठ बगल में गाती हो,
तो नंदन-सम इसी विजन में
मुझे स्वर्ग का हो अभिषेक।

(मैथिलीशरण गुप्त, पद्य सं. 11)

हिंदी अनुवाद (2)

घनी सिर पर तरुवर की डाल,
हरी पाँवों के नीचे घास,
बगल में मधु मदिरा का पात्र
सामने रोटी के दो ग्रास,
सरस कविता की पुस्तक हाथ,
और सबके ऊपर तुम, प्राण,

गा रही छेड़ सुरीली तान,
मुझे अब मरू, नंदन उद्यान।

(हरिवंशराय बच्चन, पद्य सं. 11)

हिंदी अनुवाद (3) तन्द्रिल तरूतल, छाया शीतल,
स्वप्निल मर्मर।
हो साधारण खाद्य उपकरण,
सुरा पात्र भर।
गाओ जो तुम प्रेयसि निरूपम,
गीत मनोहर,
फिर यह निर्जन स्वर्ग सदन सम
हो चिर सुखकर।

(सुमित्रानंदन पंत, मधुज्वाल, पृ. 90)

उदाहरण -- 3

आमद सहरे निदा ज़े मय ख़ानाए मा
किए रिंद खराबाती व दीवानाए मा
बरखेज़ कि पुरकुनेम पैमानाए ज़े मय
ज़ां पेश कि पुरकुनंद पैमानाए मा।

(उमर खैयाम)

अंग्रेजी अनुवाद Dreaming when Dawn's Left Hand was in the Sky
I heard a Voice within the Tavern cry,
"Awake, my Little ones, and fill the Cup
Before Life's Liquor in its Cup be dry".
(Fitzgerald, Rubiyat of Omar Khayyam, Sl.-2)

हिंदी अनुवाद (1) उषा ने ले अंगड़ाई, हाथ
दिए जब नभ की ओर पसार,
स्वप्न में मदिरालय के बीच
सुनी तब मैंने एक पुकार—

“उठो, मेरे शिशुओ नादान,
बुझा लो पी-पी मदिरा भूख,
नहीं तो तन-प्याली की शीघ्र
जाएगी जीवन-मदिरा सूख।”

(हरिवंश राय बच्चन, खैयाम की मधुशाला, संख्या 2)

हिंदी अनुवाद (2) अंगड़ाता था अरुण खड़ा, जब बढ़ा वाम कर अंबर में

काव्यानुवाद : 405

मुझे सुन पड़ा स्वप्न-राज्य में तब यह स्वर मदिरा घर में
व्यर्थ सूखने के पहले ही जीवन-प्याली में हाला
जाग जाग, अय मेरे शिशु-दल, ढाल ढाल मधु पी प्याला ।

(पं. केशवप्रसाद पाठक, रुबाइयात उमर खैयाम, सं. 2)

हिंदी अनुवाद (3) वाम-कनक-कर ने उषा के

जब पहला प्रकाश डाला,
सुना स्वप्न में मैंने सहसा
गूँज उठी यों मधुशाला—
'उठो, उठो, ओ मेरे बच्चो,
पात्र भरो, न विलंब करो,
सूख न जावे जीवन-हाला,

रह जावे रीता प्याला ।'

(मैथिलीशरण गुप्त, रुबाइयात उमर खैयाम, सं. 2)

हिंदी अनुवाद (4) पौ फटते ही मधुशाला में, गूँजा शब्द निराला एक,
मधुबाला से हँस-हँस कर यों कहता था मतवाला एक-
“स्वांग बहुत है रात रही पर थोड़ी, ढालो ढालो शीघ्र
जीवन ढल जाने के पहले ढालो मधु का प्याला एक ।”

(रघुवंश लाल गुप्त, उमर खैयाम की रुबाइयाँ, सं. 2)

हिंदी अनुवाद (5) खोलकर मदिरालय का द्वार
प्रात ही कोई उठा पुकार
मुग्ध श्रवणों में मधु रव घोल,
जाग उन्मद मदिरा के छात्र!
दुलक कर यौवन मधु अनमोल
रोष रह जाए नहीं मृदु मात्र,
ढाल जीवन मदिरा जी खोल
लबालब भर ले उर का पात्र ।

(सुमित्रानंदन पंत, मधुज्वाल, संख्या 2)

□

मूल एक : अनुवाद अनेक
(जर्मन कविता का अंग्रेजी अनुवाद)

Gunter Grass
Tr. : Norbert Jost

What Must Be Said

Why am I silent, conceal already too long time,
What is apparent and has been simulated
in exercises, at the end of which we the survivors
may at best be footnotes.

It is the alleged entitlement for a first strike,
which could extinguish the Iranian people,
— subjugated by a big mouth and
directed to organized jubilations —
because one assumes
the making of a nuclear bomb.

Alas, why do I restrain myself
to name the name of the other country,
where since years-although kept secret —
a growing nuclear potential (is) available,
albeit beyond control, because inaccessible
for any examination?

The general silence of this fact,
which my silence has subordinated itself to,
I feel to be a burdensome lie
and as coercion, which promises punishment,
soon as it is not complied with;
the verdict "antisemitism" is ready at hand.

However, now, that my country,

which is confronted with its very own crimes
which are unique without comparison,
again and again and made to answer for,
is about to deliver, routinely and business like,
even though with a nimble tongue declared as reparation,
is to supply Israel another submarine, the speciality of which
is to deliver all-destructive warheads
to where the existence
of a single nuclear bomb is unproven,
only "proven" by the strength of fear
I say, what must be said.

But why did I remain silent so far?
Because I was of the opinion, that where I am from,
which is stained with a never removable stain,
forbids me, to dare confronting Israel
the country I am attached to and want to remain so,
with this fact as an outright spoken truth.

Why do I speak now only,
aged and with the last ink:
The nuclear power Israel endangers
the world's peace, ever so delicate anyhow?

Because it must be said,
what already tomorrow could be too late;
also because we — as Germans burdened enough —
could become suppliers of a crime,
which can be foreseen, and why our complicity
could not be made undone by any of the usual evasions.

And admitted: I do not remain silent anymore,
because I am weary of the hypocrisy of the West;
moreover, it is hoped,
may many free themselves of the bondage of silence
demand from the originators of the discernible danger
the renunciation of all violence and
simultaneously insist,
that an unhindered and permanent control
of Israeli nuclear potential

and of Iranian nuclear facilities
through an international entity
will be permitted by the governments of both countries.

Only this way, everybody, Israelis and Palestinians
even more, all human beings, who live as enemies
next to each other in this region, occupied by madness,
can be helped — ultimately us, too.

□

हिंदी अनुवाद : 1

गुंटर ग्रास

अनु. : डॉ. बी.एस. त्यागी

जो जरूर कहा जाना चाहिए

मैं चुप यों हूँ...?
क्यों गुप्त रखा गया उसे
इतने लंबे समय से?
जो व्यवहार में था
क्यों नहीं सामने लाया गया उसे?
महत्त्वहीन हो जाएँगे हम जीवित बचे लोग
जिसके अंत में।
प्रथम आक्रमण का यह तथाकथित अधिकार
कर सकता है ईरान में नरसंहार
बनाकर रख दिया है गुलाम जिन्हें एक आत्मदंभी ने
और ले गया है उन्हें संगठित उत्सव की ओर
क्योंकि मान लिया है उसने --
वह बना रहा है परमाणु बम।

अफसोस! क्यों मैंने नाम नहीं लिया उन देशों का
जहाँ वर्षों से पनपती रही परमाणविक शक्ति
रखा गया उसे गुप्त और नियंत्रण से परे
क्योंकि उपलब्ध नहीं थी

काव्यानुवाद : 409

किसी भी निरीक्षण के लिए।
 इस यथार्थ पर सभी के मौन को
 गौण कर दिया है और भी मेरे मौन ने
 समझता हूँ इसे बोझिल असत्य
 और बल के रूप में दंडनीय भी,
 यदि शीघ्र ही नहीं माना गया इसे
 फरमान जारी कर दिया जाएगा --
 मैं 'यहूदियों के विरुद्ध' हूँ।
 जो भी हो, अब मेरा देश
 जूझ रहा है अपने ही अपराधों से
 जो क्रूरता में बेजोड़ हैं
 ठहराया जाता है उत्तरदायी बार-बार उसके लिए
 रोजमर्रा की तरह --
 बड़ी ही कुशलता व सहज ढंग से
 भले ही कर दिया घोषित उसे
 युद्ध-दंड के रूप में।
 दे रहा है वह इज़राइल को
 एक और पनडुब्बी जो ले जा सकती है
 सभी विध्वंसक हथियार।
 जहाँ परीक्षण नहीं किया गया
 एक भी आणविक बम --
 सिद्ध कर दिया गया है उसे
 केवल भय की शक्ति से।
 मैं कहता हूँ जो जरूर कहा जाना चाहिए।

किंतु मैं अब तक चुप क्यों रहा?
 क्योंकि मैं समझता था
 मैं जिस देश का वासी हूँ
 उस पर ऐसे दाग हैं
 जो कभी साफ नहीं हो सकते
 वे मुझे रोकते थे
 सामना करने से इज़राइल का।
 जिस देश से मैं जुड़ा हूँ
 और जुड़ा रहना भी चाहता हूँ

इस यथार्थ के साथ कि --
मैं साफ-साफ सच कह दूँ।

अब क्यों बोल रहा हूँ?
बूढ़ा हो चला हूँ और --
स्याही की आखिरी बूँद बची है कलम में,
खतरा है इज़राइल की आणविक शक्ति
विश्व-शांति को जो पहले से ही नाजुक है
क्योंकि यह बात अवश्य कही जानी चाहिए
कल बहुत देर हो सकती है
इसलिए भी --
काफी बोझिल है आत्मग्लानि से हम जर्मनवासी
और बन सकते हैं अपराध के संभरक
जिसका सहज ही पूर्वाभास किया जा सकता है
कदापि समाप्त नहीं किया जा सकता
हमारी सहापराधिता को
किसी मामूली बहाने से।

यह सच है --
अब और चुप नहीं रहूँगा
तंग आ गया हूँ पाश्चात्य के पाखंड से
इसके अलावा उम्मीद करता हूँ --
और बहुत से लोग
तोड़ देंगे इस चुप्पी के बंधन को
और कह देंगे साफ-साफ खतरे के जनक से
छोड़ने के लिए हिंसा
साथ ही इस बात पर भी जोर देंगे -- कि
इज़राइल व ईरान की सरकारें
अनुमति दें अंतर्राष्ट्रीय संस्था को
आणविक सुविधाओं के निरीक्षण की बेरोक-टोक।
केवल इस तरह --
प्रत्येक इज़राइली और फिलीस्तीनी
और दूसरे जो इस क्षेत्र में
शत्रु बने बैठे हैं एक-दूसरे के

और पागलपन के शिकार हो गए हैं
सहायता हो सकती है उनकी
और अंततः हमारी भी ।

□

हिंदी अनुवाद : 2

गुंटर ग्रास

अनु. : डॉ. श्रीनारायण 'समीर'

जो जरूर कहा जाना चाहिए

मैं क्यों रहूँ मौन
क्यों रखूँ राज वर्षों तक नितांत गोपन
युद्ध की विसात बिछा रहे हैं चालबाज
जिसके बाद हम बचेंगे शायद हाशिए पर ही...
बना दिए जाएँगे निपट नकारा...

आदमखोर चाहते हैं बार-बार
पहले हमले का अधिकार
चाहिए अधिकार
ईरान को नेस्तनाबूद करने का
ईरानी आवाम को तबाह करने का
चूँकि उन्हें शक है...
वह बना रहा है बम
विनाशकारी परमाणु बम
वे चाहते हैं हमला...
फिर गाल बजाएँ...
जश्न मनाएँ...
नाचें-गाएँ...

तो क्यों रहूँ मैं मौन
क्यों न फोड़ दूँ उस रखैल देश का भंडा

412 : काव्यानुवाद

जो वर्षों से गुपचुप बना रहा है बम
सिरजने के करीब है महाविनाश
होकर निर्भय, निर्लज्ज, निर्मम
पूछे न गए जो उसके सम-विषम

किसमें था दम
जो समझ सके चाल-कुचाल
गुपचुप तैयारी की करे अंदरूनी पड़ताल
सारी दुनिया रही मौन
मेरी भी बंधी रही घिग्घी
मैं सूँघता हूँ हर तरफ पसरा हुआ झूठ
और सजा की धमकियाँ
न मानने पर लगेगा वही पुराना 'नाजी'
होने का इल्जाम

हालाँकि, अब, मेरा देश,
जो अंदर ही अंदर घुटता रहा
अपने ही गुनाहों में
जलता रहा आत्मग्लानि की आग में
उठाने को तुच्छ व्यावसायिक लाभ
दबी जुबान से कहता है,
प्रायश्चित के लिए देगा वह
एक और परमाणु पनडुब्बी इज़राइल को
पनडुब्बी,
जो कर सकती है महाविनाश
ढूँढ-ढूँढ कर ध्वस्त कर सकती है
विध्वंस के साजो-सामान
क्योंकि इन्हें शक है...
महज शक
एक एटम बम होने का
मैं छटपटाता हूँ...
बड़बड़ाता हूँ,
बाहर आता हूँ, भय के अंधेरे से

कैसे मान लूँ उनके शक को सच...
सोचता हूँ...
आखिर मुझे कहना ही चाहिए
जो कहना बेहद जरूरी है

भय रोकता है और छा जाता है मेरे अस्तित्व पर
मैं अब तक क्यों रहा मौन
क्योंकि मेरे पूर्वजों ने किए हैं घोर पाप
मेरे भी हाथों में लगा है खून
हम पर हैं दाग...
कभी न धुलने वाले दाग
जो इज़राइल के मामले में
मुझे रोकते रहे, टोकते रहे
मानते रहे हम आँख मूँद कर
उनके झूठ को सच...

अब, जब मैं हो गया हूँ उम्रदराज
मंद हो चला है जीवन का साज
इज़राइल की परमाणु ताकत से
पहले से ही कमजोर विश्व-शांति
ले सकती हैं अंतिम साँस
तो मैं सोचता हूँ
अब मैं कह दूँ वह बात, जो बेहद जरूरी है

हो सकता है, कल हो जाए बहुत देर
हम जर्मन जो अपने कंधों पर
ढो रहे हैं इतिहास का बोझ
इसीलिए सहभागी हैं इस अपराध में...

कोई तर्क माफ नहीं करेगा हमें
पश्चिम जी रहा है अपने पाखंड और झूठ में
फिर देर हो जाएगी...
बहुत देर...
मैं...

मैं मौन नहीं रहूँगा
मेरी आवाज मुक्त करेगी
औरों को भी भय भरे मौन से
फिर वे संभावित खतरे को लेकर
हमले की तैयारी करने वाले से पूछेंगे सवाल
कहेंगे -- छोड़ो हिंसा, हिंसा छोड़ो
माँगेंगे अबाध और अनाहत अधिकार
इज़राइली परमाणु क्षमता
और ईरानी ठिकानों का
दोनों सरकारों की रजामंदी से
इज़राइल और फिलीस्तीन का,
सभी का, पूरे अवाम का
इसी से मिटेगी सनक और पागल दौड़
खत्म होगी अंधी होड़
'जिमि दसनहु मंह जीभ...'
हमेशा दुश्मनों से घिरे
हम सब भी मुक्त होंगे
इसलिए मेरा यह कहना बेहद जरूरी है
ताकि जागे विवेक
पूरी दुनिया हो एक।

□

मूल एक : अनुवाद अनेक

मूल कविता

Rainer Maria Rilke

The Panther

His gaze, going past those bars,
has got so misted
with tiredness, it can take in
nothing more.
He feels as though a thousand
bars existed,
and no more world beyond them
than before.

Those supply powerful paddings,
turning there
in tiniest of circles, well might be
the dance of forces round a
centre where
some mightly will stands
paralytically.

Just now and then the pupils'
noiseless shutter
is lifted. - Then an image will
indart,
down through the limbs' intensive
stillness flutter,
and end its being in the heart.

□

अनुवाद : 1

अनु. : सच्चिदानंद हीरानंद
वात्स्यायन 'अज्ञेय'

गुलदार

सामने लगातार गुजरती छड़ों से थकी दीठ
कुछ पकड़ती नहीं, उछट चली जाती है
पार कहीं —
लगता है उसे मानो हजार पर हजार छड़ें हैं
और हजारों छड़ों के पार कहीं कोई
संसार नहीं।

दबी चाप उसके लचकीले बलिष्ठ पैरों की
काटती है चक्कर एक बहुत तंग घेरे में
मानो कहीं केंद्र में एक स्तंभित संकल्प हो
शक्ति के नृत्य के एक फेरे में।

केवल कभी पुतलियों पर से अस्तर
उठती हैं पलकें।

छवि एक भीतर समाती है --
अंगों की तनी जड़ता के पार उतर
अंतर के गह्वर में मूँद जाती है।

□

अनुवाद-2

अनु. केदारनाथ सिंह तेंदुआ

पिंजड़े की छड़ों से गुज़रते हुए
उसकी आँखें इतनी थक गई हैं
कि वे कुछ भी देख नहीं पातीं।

उसे लगता है वहाँ हज़ारों छड़ हैं
और उनके पीछे हज़ारों छड़
और दुनिया नहीं है।

उसके मज़बूत कदमों की मुलायम चाल
छोटी से छोटी गोलाइयों के अंदर
ताकत के भयानक नृत्य की तरह लगती है
जड़
और अवाक्!

सिर्फ़ कभी कभी
उसकी पुतली का पर्दा उठता है
एक तस्वीर अंदर प्रवेश करती है
और उसके तने हुए अंगों से होती हुई
उसके हृदय तक जाती है
और मर जाती है।



अनुवाद-3

अनु. विनोद शर्मा तेंदुआ

उन सलाखों से परे देखते-देखते
उसकी नज़र थकान से इतनी धुँधला गई है
कि उसके दायरे में अब कुछ और नहीं आता ।

उसे महसूस होता है
कि उसके गिर्द हज़ारों सलाखें हैं
और उनके पार

वह दुनिया अब नहीं है
जो कभी उसकी थी ।
छोटी से छोटी गोलाइयों में घूमते हैं
उसके ताकतवर गद्दीदार पाँव
और उसका यह घूमना
शायद एक नाच हो ।

नाच
लकवाग्रस्त निस्पंद खड़ी इच्छाशक्ति के
इर्द-गिर्द

घूमती हुई ताकतों का नाच ।
गाहे-बगाहे

उसकी पुतलियों का पर्दा जरूर उठता है :
निःशब्द

तभी एक तस्वीर भीतर की ओर झपटती है
उतर जाती है उसके अंगों की गहरी
निष्क्रियता में और उसके हृदय तक जाकर
मर जाती है ।



मूल हिंदी कविता

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'
जीवन सत्य

मरियल घोड़े को
ताँगे से जोते
एक कृशकाय बुजुर्ग
कर रहा मनुहार
सवारियों से बार-बार —
'एक रुपए में सदर बाजार!!'

आई तभी एक बस
टूट पड़ी भीड़ बस।
मशीन के आगे बेबस
'हॉर्स पॉवर'—
कैसे जी रहे हैं जिंदगी
यूँ मर-मर कर।

□

मराठी अनुवाद

अनु. डॉ. भगत दशरथ
तुकाराम
जीवन सत्य

मरततुकड्या घोड्याला
टांग्याला जुंपून
एक जख्म म्हतारा
करतो विनवणी
प्रवाश्यांना वारंवार
एक रूपायात सदर बाजार

आली तेव्हा एक बस
तुटून पडली गर्दी बस
यंत्राच्या पुढे लाचार
'हॉर्स पावर' —
कसे जगत आहे जीवन
असे मरत मूरत

□

मूल कविता

W.B. Yeats

Death

Nor dread nor hope attend
A dying animal;
A man awaits his end
Dreading and hoping all;
Many times he died,
Many times rose again.

A great man in his pride
Confronting murderous men
Casts derision upon
supersession of breath;
He knows death to the bone --
Man has created death.

□

हिंदी अनुवाद

अनु. : विनोद शर्मा

गुलदार

मरते हुए जानवर को
न डर परेशान करता है
और न थपथपाती है उम्मीद
और आदमी
अपने अंत का इंतजार करता है;
भयातुर

कई उम्मीदें सँजोए हुए
यों वह कई बार मरा
और हर बार जी उठा

मगर महान व्यक्ति
हत्याओं का मुकाबला करता है
और गर्व से
उड़ाता है मखौल
साँसों के अवरुद्ध होने का
बखूबी पहचानता है
वह मौत को
और जानता है :
आदमी ने ही तो
गीत को
ईजाद किया है।

□

* Sunita, J.N.U. New Delhi-110067

डॉ. रवि शर्मा 'मधुप'

जिंदगी, शहर और चौराहा

वह थम जाती है
आकर चौराहे पर —
पास ही आकर ठहरा
शहर शोर-भरा
कुछ क्षणों के लिए —
 फिर आगे बढ़ गए
 शहर भी, जिंदगी भी
 लाल, पीली, हरी बत्ती
 के सहारे।
चौराहा चिंतन का यह
बत्तियाँ तर्क-वितर्क, चेतावनियाँ।
इस चौराहे पर
रुकना ही पड़ता है
सबको —
 क्योंकि बत्ती
 लाल होती ही रहती है —
 फिर भी अक्सर
 टकरा ही जाते हैं
 जिंदगी और शहर —
हर बार
होती ही है घायल
जिंदगी
कभी-कभी टकराहट
हृद से आगे बढ़ जाती है
टकराहट शहर से

बेचारी
जिंदगी मर जाती है।
 काली अँधियारी रात में
 हो जाता है भयानक
 यह चौराहा
 और भी —
 अँधेरा
 निगल लेता है
 अपने भीतर
 इन प्रकाशदीपों को —
 कीमत जिंदगी की
 और भी घट जाती है —
 लगता प्रतिपल
 कोई अनहोनी घट जाती है।

पाकर इस चौराहे को
बचकर शहर से
जब जिंदगी वापस
घर आती है —
तो वह
एक नया जन्म पाती है
यूँ जिंदगी
मौत के बीच
बार-बार जी जाती है

□

अनु. डॉ. भगत दशरथ तुकाराम

जीवन, शहर आणि चौक

ती थांबत आहे
येऊन चौकावर
जवळच येऊन थांबले
शहर गोंगाटाने गजबजलेले
काही क्षणांसाठी –
मग पुढे पुढे चालले
शहर ही, जीवन ही
लाल, पिवळ्या, हिरव्या दिव्याच्या
आधाराने
चौक चिंतनाचा हा
दिवे तर्क-वितर्क इशारे
यां चौकावर
'थांबावेच लागते
सगळ्यांना
कारण की,
दिवा लाल होतच राहतो –
तरीही बऱ्याचंदा
टक्करतात
जीवन आणि शहर
प्रत्येक वेळी
होतच आहे घायाळ

जीवन/कधी कधी टक्कर
सीमेच्या पुढे जाते
टक्कर देऊन शहराशी
बिचारे/जीवन मरून जाते
काळया अंधान्या रात्री
होत जातो भयानक
हा चौक अजूनही
अंधार/गिळून घेतो
आपल्यामध्ये
या प्रकाश दिव्यांना –
किंमत जीवनाची
अजूनही घटत जाते
वाटते प्रत्येक क्षणी
काहीतरी अघटित घडणार आहे
ओलांडून/त्या चौकाला
शहरापासून स्वतःला बचावून
जेव्हा जीवन परत
घरी येते/तेव्हा त्याला,
एक नवा जन्म मिळतो
असे जीवन/मरणामध्ये
पुन्हा: पुन्हा जगत राहते.

□

मूल कविता

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'
जलाशय के किनारे
कुहरी थी

जलाशय के किनारे कुहरी थी,
हरे-नीले पत्तों का घेरा था,
पानी पर आम की डाल आई हुई;
गहरे अँधेरे का डेरा था,

किनारे सुनसान थे, जुगनू के
दल दमके — यहाँ वहाँ चमके,
बन का परिमल लिए मलय बहा,
नारियल के पेड़ हिले क्रम से
ताड़ खड़े ताक रहे थे सबको,
पपीहा पुकार रहा था छिपा
स्यार बिचरते थे आराम से,
उजाला हो गया और तारा दिपा,
लहरें उठती थीं सरोवर में
तारा चमकता था अंतर में।

अंग्रेजी अनुवाद

Surya Kant Tripathi 'Nirala'
Trans. : Raj Kumar Saini
**A Thick Dusk Around
the Pond...**

A thick dusk around the pond,
Bowers of painted leaves and flowers,
Mango-branches into watery mirror
peep;
A campus of darkness vast and deep.

Solitary shores frozen in silence,
Glowing worm spark'd astray
hither thither gleam'd in fray,

Hilly wind spray'd wild fragrance,
Coco's fann'd as if Order moved,
Palm--trees stared all around...

The romantic bird calling from latent
shelter,

Jackals stroll'd at ease;
Dawn flashed...and a star brightened,
Waves peep'd up from the pond,
The Star, sparkled in the night of
heart.

□

□

मूल कविता

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' स्नेह निर्रर बह गया है

स्नेह निर्रर बह गया है।
रेत ज्यों तन रह गया है।

आम की यह डाल जो सूनी दिखी,
कह रही है – “अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति में वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ – जीवन दह गया है।

दिए हैं मैंने जगत को फूल-फल,
किया है अपनी प्रभा से चकित-चल;
पर अनश्वर था, सकल पल्लवित पल –
ठाट जीवन का वही जो ढह गया है।

अब नहीं आती पुलिन पर प्रियतमा,
श्याम तृण पर बैठने को निरूपमा।
बह रही हृदय पर केवल अमा;
मैं अलक्षित हूँ, यही कवि कह गया है।

अंग्रेजी अनुवाद

Surya Kant Tripathi 'Nirala'
Trans. : Raj Kumar Saini

Tide of Love

Tide of love, lowered fast,
A body of sand it leaved at last.

Mango-bower looks forlorn...
For seasonal bird, they left her lone,
She whispers on with melancholy
tone,
A meaning-less verse and the life
charred.

I served the world with flowers and
fruits,
with grace and made it more to suit;
A time of growth... an undying
youth.
All glorious lives then wore that
mask.

Ah ! Sweet-love, that never returns,
and play on arms that sun blackens,
A veil of dark over heart thickens,
"Un-noticed!" said the poet, who
passed...

* Literal equivalence has been avoided
to retain imagery.

मूल कविता

सत्येंद्र प्रयासी

मैंने बिल्ली का रास्ता काटा

बिल्ली रोज मेरा रास्ता काटती थी
आज मैंने उसका रास्ता काटा ।
वो रुकी मुझे घूरती हुई देखने लगी
और कहने लगी ।

बच्चे तू ये क्या कर रहा है?
मेरा काम खुद कर रहा है ।

मैं तेरा रास्ता काट कर, तुझे डराती थी
तेरे संकल्प को हिलाती थी,
तेरे इरादों पर पानी फेरती थी,
तेरी तकदीर बदलती थी ।

पर अब ये क्या
तू मुझमें समाकर
मेरा चरित्र अपनाकर
मेरी राह बदल कर
क्या साबित करना चाहता है?
'कलयुग' सचमुच में आ गया है!

अंग्रेजी अनुवाद

Trans. : Dr. Satyendra
Prayasi

**The black cat's way,
been crossed by me
today**

A black cat used to cross my way
Day by Day
I crossed her zigzag way cleverly to
day.

Stared at me.
Mesmerized, "what are you doing,
innocent child ?"

Assigned who, by this unique job to
you she questioned?

By crossing your way
I used to make you frightened,
Used to make your resolutions
shaken,

your determined dreams were being
erased by me,

It was I only, who was Fading your
commitments,

Diverting your fate even.

But now what's all this?

By transforming yourself in me,

Adopting my tact,

What! actually do you tend to prove

That the "Kalyuga" has virtually
come!

□

□

बबन सराडकर

दुःख

दुःख सुखापाशी गेले
हात हलवत आले,
दुःख दुःखापाशी गेले
आणि सुख-सुख झाले,
झाड नभापाशी गेले
फांद्या वाकल्या मोडल्या,
झाड मातीपाशी गेले
खोल रुजोनिया आले,
असे दुःख अशी माती
झोळी भरू भरू ध्यावी,
बांध फुटण्याच्या क्षणी
मूठ मूठ भिजवावी...

□

अनु. कमलिनी श. पशीने

दुःख

दुःख सुख के द्वार गया,
खाली हाथ वापस लौटा।
दुःख दुःख के पास गया,
और सुख से अभिभूत हुआ।
वृक्ष आकाश के निकट गया,
टहनियों में खंडित हो टूट गया।
वृक्ष माटी के समीप गया,
गहराई जड़ें — विकसित हुआ।
ऐसा दुःख, ऐसी माटी,
झोली भर-भर लीजिए।
बाँध फूटने के समय,
मुट्ठी-मुट्ठी भिगोइए।

□

बबन सराडकर

सुख

साध्या गवताच्या फुलण्याला सुख म्हटले मी
सहज भेटलेल्या जगण्याला सुख म्हटले मी...
अवतीभवती झगमगती नक्षत्रे होती
पण वातीच्या पाजळण्याला सुख म्हटले मी...
लोक भेटले डोंग्यावरती तहानलेले
अन् छपराच्या पाझरण्याला सुख म्हटले मी...
ते हिरवे हंगाम फुलांचे ज्याचे त्याला
हाती उरल्या पाचोळ्याला सुख म्हटले मी..
ज्यांच्यासाठी कापरापरी जळयो – विझलो
त्या दोस्तांच्या ठोकरण्याला सुख म्हटले मी...
अजून आहे जमीन माझ्या पायाखाली
ठेच लागुनी सावरण्याला सुख म्हटले मी...

□

अनु. कमलिनी श. पशीने

सुख

घास के भी पुष्पित होने को, सुख कहा मैंने।
सहज जिंदगी जीने को, सुख कहा मैंने।
चमकते सितारे थे आस-पास, लेकिन,
बाती के टिमटिमाते जलने को, सुख कहा मैंने।
नाव में बैठे लोग भी, मैंने देखे हैं प्यासे,
छप्पर से पानी रिसने को, सुख कहा मैंने।
औरों को मुबारक हो, मुस्कुराता हुआ वसंत,
अंजुलि में जमा घास-फूस को, सुख कहा मैंने।
जिनके लिए मैं जला-बुझा, कपूर की तरह,
उन दोस्तों के ठुकराने को, सुख कहा मैंने।
सलामत है अभी, मेरे पाँव तले जमीन।
ठोकर खाकर सँभलने को, सुख कहा मैंने।

□

प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन

मेरी आमद

यूँ सफर-भर याद हैं — गुजरे मुकामातों के लोग
मेरी मजबूती तो हैं, कमजोर हालातों के लोग।

दोस्त-दुश्मन — गैर अपने, पास से देखे सभी।
हैं तो ये इंसा ही अखिर — सब धरम-जातों के लोग।

मैं कई सदियों से — यूँ खामोश था संतप्त था
मेरी जानिब से बहुत बोले हैं बे-बातों के लोग।

वात मंजिल की — तो करने का कोई मतलब नहीं।
ये तजुर्बति सफर लें — मुझसे जो चाहते हैं लोग।

यह मेरा बचपन करोड़ों बेसहारों का वजूद
है उन्हीं के हाथ में — जीवन जो दे पाते हैं लोग।

बच गई साँसें तो ले आया मैं इस अंजाम तक —
कल मिलूँगा मुझसे मिल लेना बहुत चाहते हैं लोग।।



Sheoraj Singh Bechain
Trans. : Tapan Basu

My Arrival

At the end of my travels, I remember my pauses — the house I dwelt in and the people with whom I stayed.

My strength, most of all, I have derived from those who were wretched like myself.

Both friends and foes, distant or near, everybody I encountered revealed a human self, despite differences from each other in caste and creed.

For centuries I, mute and long-suffering, have been spoken about, misrepresented, by people who do not know me.

Of what avail is it to listen to half-truths? Let those who want to hear the real story hear it from me.

The story of my childhood, which is the childhood story of millions of children, I dedicate to those who might be their saviours.

My own rescued life has enabled me to bring my story up to this point, I promise to tell more tomorrow to those who are eager for the narrative to continue.



मूल कविता (अमेरिकी)

Carl Sandberg

Fog

The fog comes
on little cat feet.

It sits looking
over harbor and city
on silent haunches
and then moves on.

□

हिंदी अनुवाद

अनु. : विनोद शर्मा

कोहरा

नन्हें बिल्ली-पैरों पर
चला आता है

कोहरा

बैठता है वह
खामोश पुट्टों पर
देखता हुआ

बंदरगाह

और शहर के

पार

और फिर

चल

पड़ता है।

□

मूल कविता (अमेरिकी)

Carl Sandberg

Grass

Pile the bodies high at Auserlitz and
Waterloo,
Shovel them under and let me work -
I am the grass; I cover all.

And pile them high at Gettysburg
And pile them high at Ypres and
Verdun.
Shovel them under and let me work.
Two years, ten years, and
passengers ask the conductor:

What place is this?
Where are we now?

I am the grass.
Let me work.

□

हिंदी अनुवाद

अनु. : विनोद शर्मा

घास

लगा दो
जिस्मों के ढेर
आस्टरलिट्ज
और वाटरलू में

दफना दो
बेलचों से उन्हें
और करने दो
मुझे काम

घास हूँ मैं
सब ढक लेती हूँ
लगाओ
उनके ऊँचे ढेर

गेटिसबर्ग

ईप्र
और वर्डन में

दफना दो उन्हें
और करने दो
मुझे काम।

दो साल
दस साल
और सैलानी पूछते हैं
बस कंडक्टर से :
कौन-सी जगह है यह?
हम अब कहाँ हैं?

घास हूँ मैं
करने दो
मुझे काम।

□

देवकांत बरुवा

सागर देखिछा?

सागर देखिछा? देखा नाइ केतियाओ? मयो देखा नाइ,
शुनिछो तथापि,
नीलिम सलिल राशि, बाधाहीन उर्मिमाला, आछे दूर
दिगंत बियपि।
मोरोई अंवरखनि सागरर दरे नीला वेदनारे,
देखा नाइ तुमि?
उठिछे मरिछे जेत बासनार लक्ष ढउ तोमारेइ
स्मृति-सीमा चुमि।



हिंदी अनुवाद

अनु. : रमानाथ त्रिपाठी

सागर देखा है?

सागर देखा है? नहीं! देखा कभी भी, मैंने भी नहीं देखा?
सुना है तथापि
नीली सलिल राशि, बाधाहीन उर्मिमाला फैली है
दूर दिगंत तक।
मेरा भी अंतर है, सागर की तरह नीली वेदना सी
नहीं देखा तुमने?
उठती हैं, बिखरती हैं वासनाओं की लक्ष तरंगें तुम्हारी ही
स्मृति-सीमा को स्पर्श कर।



लैंगस्टन ह्यूज
अनु. : विनोद शर्मा

मैं देखता हूँ दुनिया का स्वप्न

मैं स्वप्न देखता हूँ उस दुनिया का
जहाँ कोई किसी से घृणा नहीं करता
जहाँ प्यार वरदान देता है पृथ्वी को
और शांति उसके रास्तों की शोभा बढ़ाती है
मैं उस दुनिया का स्वप्न देखता हूँ
जहाँ सभी जान जाएँगे महकती आजादी के दस्तूर
जहाँ लालच आत्मा को निर्बल नहीं बनाएगा
हमारे दिन को नष्ट नहीं करेगी कोई लोलुपता
देखता हूँ मैं उस दुनिया का स्वप्न
जहाँ काली या गोरी
चाहे जिस भी नस्ल के वंशधर हो आप
पृथ्वी के वरदानों और उपहारों में सबका हिस्सा होगा
और जहाँ हर आदमी आजाद होगा
जहाँ सिर झुका देगी अपना सिर गरीबी
और खुशी, एक मोती की तरह,
पूरी कर देगी मनुष्य जाति की सभी जरूरतों को
ऐसी दुनिया का स्वप्न देखता हूँ मैं —
हमारी दुनिया का।

□

पाश
अनु. : प्रो. चमनलाल
सपने

सपने
हर किसी को नहीं आते
बेजान बारूद के कणों में
सोई आग को सपने नहीं आते
बदी के लिए उठी हुई
हथेली के पसीने को सपने नहीं आते
शेल्फों में पड़े
इतिहास ग्रंथों को सपने नहीं आते
सपनों के लिए लाजिमी है
झेलने वाले दिलों का होना
सपनों के लिए
नींद की नजर होनी लाजिमी है
सपने इसलिए
हर किसी को नहीं आते ।

□

Trans.: Sunita
Dreams

Everyone cannot hope to dream.
The particles of dead explosives.
The fire without a spark cannot hope
to dream.
for those hand raised in prayer.
Sweating palms cannot hope to
dream.
When left alone in shelves.
Historical epics cannot hope to
dream.
For dreams, it is necessary to
ensure.
The presence of enduring hearts.
To ensure dreams.
The sight of sleep is necessary.
For this reason
Everyone cannot hope to dream.

□

अंतोनियो पोर्चिया
अनु. : अशोक वाजपेयी

हम छाया तक नहीं : कविता संग्रह से

विश्वास न करने में एक बीमारी है जो थोड़ा
विश्वास करना है

जब मैं कुछ नहीं में विश्वास करता हूँ तो
तुमसे मिलना नहीं चाहता जो कि कुछ नहीं
में विश्वास करते हो।

उसे, जो नहीं जानता कि कैसे विश्वास करना
चाहिए, नहीं जानना चाहिए।

मेरा अंतिम विश्वास यातना है। और मैं
विश्वास करना शुरू कर रहा हूँ कि मैं
भुगतता नहीं हूँ।

हाँ, मैं होने की कोशिश करूँगा। क्योंकि मैं
विश्वास करता हूँ न होना अहंकार है।

□

आदम ज़गयेफ़स्की
अनु. : मोनिका ब्रोवार्चिक एवं मारिय स्काकुय पुरी

बंदर

एक दिन बंदरों ने हथिया ली सत्ता,
उँगलियों में सोने की अँगूठियाँ ढूँस लीं,
सफ़ेद, कलफ़दार क़मीज़ें पहनीं,
सुगंधित हवाना सिगार का कश लगाया,
अपने पाँव में डाले चमाचम काले जूते।
हमें पता ही न चला, क्योंकि हम दूसरे
कामों में व्यस्त थे, कोई अरस्तू पढ़ता रहा,
तो कोई आकंठ प्यार में डूबा हुआ था।
शासकों के भाषण ऊटपटाँग होने लगे,
गपड़-सपड़, पर हमने कभी इन्हें
ध्यान से सुना ही नहीं, हमें संगीत ज्यादा पसंद था।
युद्ध अधिक वहशी होने लगे, जेलखाने
पहले से और गंदे हो गए।
तब जाकर लगा, कि शासन सचमुच बंदरों के
हाथ में है।

□

आदम ज़गयेफ़स्की
अनु. : मोनिका ब्रोवर्चिक एवं मारिया स्काकुय पुरी
निष्क्रमण करते लोग

लोग देश से आ रहे हैं असबाब लादे
झुके हुए, भूखे।
बोझ से निकल रहा है कूबड़
कभी दीखता है, अक्सर नहीं दीखता,
पाँव मुश्किल से उठते हैं, धँसते हैं कीचड़ में
या रेगितान की रेत में।

गुमसुम मर्द गाढ़े की अचकन पहने
(वर्ष की हर ऋतु में वही पोशाक)
झुर्री-भरे चेहरों वाली बूढ़ी औरतें
बाँहों में उठाए हुए जो कुछ है
-- नन्हा बच्चा, धरोहर चिराग, आखिरी पावरोटी।

यह आज बोस्निय है,
सितंबर में पोल्स्का, फ्रांस आठ महीने बाद,
सन् पैंतालीस में तुरिन्गोन,
सोमालिया कभी, कभी अफगानिस्तान।

साथ में गाड़ी या बच्चा-गाड़ी
भरी हुई कीमती वस्तुओं से

-- भरी रजाई, चाँदी का प्याला, और
निष्क्रमण कर रही घर की बास।
पेट्रोल चुकने पर खड्ड में छोड़ी गई कार
भुलाया गया घोड़ा (जिसके साथ घात होगा), बर्फ,
बर्फ ही बर्फ, जरूरत से ज्यादा बर्फ,
ज्यादा धूप, ज्यादा बारिश।

और यह विशेष झुका जैसे उस ओर हो
उस बेहतर ग्रह की ओर
जहाँ इतने महत्वाकांक्षी सेनाध्यक्ष नहीं,
इतनी तोपें नहीं, इतनी सारी बर्फ नहीं,
बवंडर-सी हवा नहीं,
इतना सारा इतिहास नहीं।
(अफसोस, ऐसा ग्रह कहीं नहीं है --
सिर्फ यह झुकाव है उस ओर)।

पाँव घिसाते,
धीरे चलते हैं आगे, बहुत धीरे,
कहीं-ही-नहीं के देश की ओर
कोई नहीं शहर की ओर
जो बसता है कभी-ही-नहीं की नदी पर।

□

Kunwar Narain
Trans.: Apurva Narain

Selected Poems

The Qutab's Precinct

All the things in my mind
were otherwise absolutely clear and chronological
that each city had
its histories and modernities
its city squares and thoroughfares
lasses and lads
rivers bridges gardens parks
difficulties and amenities
similarities and specialities
its palaces and forts
museums galleries theatres
its writers artists stars
and legends of martyrs
its epics, armies, ports and airports.

The map of each city's geography and history
was absolutely clear in my mind

That one day,
in the zoo of Lucknow or maybe Krakow,
while rambling, there rambled in my mind
the map of the entire world
and man's entire history...

In what time am I?
Where have I come from? In what city am I?

In Kafka's Prague
in a small room, No. 22 Golden Lane?
Or in the by-lanes of Venice?
Or in Ballimaran?
Am I in the grand palaces of Habsburg?
Or in Wavel Castle? Or the Diwan-e-Khas of the Red Fort?

When I returned I saw
standing in Humayun's tomb or maybe the Qutab's precinct,
a new riddle of Amir Khusro
connecting
to the chronicle of the arts, another link.



Come, But Like This

come
but like this
that you come not in recognition this time

as though not you
but in your place
a haze
a mist
wearing the bleary light of the setting sun

come
when the time is too short
and there is the endless to attain
I am in a big hurry to go somewhere
and, impatient to take me there,
an unknown lane

come then
so that it seems
someone knocked at the door

no one is there
yet let it seem that one came
so intimate
so bodiless
like a waft of wind

then melt into me and pass
as though had passed
an entire age

□

Before Turning Him Away Empty-Handed

Why does he have to come back
again and again into the same world
carrying that same empty vessel?

Why does he have to go back
each time the same way
empty-handed?

Putting a fistful of grain
look into his bowl
Is what we gave
perchance not smaller than his modesty?

Look not at the bare earthen urn
but at his eyes full of compassion
Is the beggar come to our door
perhaps not Buddha himself?

□

A Green Forest

A green forest blazes in your veins,
fire in the hem of your dress...

I wish to snatch you away from

the many contexts of your unease
and before it turns to ash
save that whole vista
in some other world of our dream-make.

Flames
brush the cool bliss of a new coast
and recede.

□

Horoscope

Reposed on flowers, often
I have thought about the dew –
dribbling luminous dots onto petals
with nibs of sunlight,
what astrologer
assembled the difficult horoscope
of this shimmering firmament?
And then why, in a flash,
does he disarrange this gilding?
From one to zero
whose this geometrical cynical yawn?

And then I have thought them too –
strewn beneath trees
the bedraggled leaves...
What in their arithmetic
are these warps n' weaves?
The wind tots up something:
picks leaves fallen somewhere,
puts them somewhere.
At times, snaps off a few leaves from a stem,
just like that, crumples them up, tosses them.

At times, spreads a new page – up to the sky's periphery,
and goes on doodling ... tree... tree... tree...

□

By The Sea

This night
by the sea
we are walking in this belief
that there
frolicking in moonlight
we will see mermaids:

On that porous sand
where the wet of waves would have waltzed
we will sit
pensive
hushed
mixed up in that same tender sight:

And thereupon will rise from the sea's mystery-womb
the shimmering illusion of silver-blue mermaids,
voluptuous spree of revelry,
the bodiless union of their angelic passions,
which, today, we will see,
and whose detached twinkle of a memory
– a surrender to beauty –
will only remain a sweet dream's burden
tomorrow
on their minds
when these nictitating tides wake up surprised...
in the vivid flush of their pink faces
veiled love-sagas will smile:
and whose secret
only you and I will know.

□

When One Can't Remain Human

Actually I am not the one you
saw floundering on the ground.
You may have seen me fleeing
from pain to empathy.

If times are bad, one can't remain human. He too
must have been human like you and me. But
I assure you
he was no one to me, whom you too
heard scream away for help in the dark
before his breath gave out.

Perhaps in that same difficult time
when I, like a scared animal,
scurried to safety and left him alone,
he, like a snared animal,
turned bloody.

□

Off Centred

I do not wish to flee life,
I wish to connect to it –
to jolt it
on its imaginary axle
at that very point where
it is most vulnerable to poetry,

I wish to first stir
that veiled source of strength,
with poised aim,
then to rivet it
turning it off its bound orbit
to a new axis of endeavour
a progress point
not as mechanical
as tilted a point
more human

□

A Long Journey In The Night By Car

As though a squad of storm
combing through dense reeds...
a long file of trees
flanking the bleak tar
and in between them scurrying headlong
a motorcar

– ripping the mountain of night –
– running in the tunnel of light –
– rasping the dark edges –
– rousing the still layers –
– wringing the wind tauter –

All of us in it
and a long breathless silence...
– bringing us together.

□

The Remaining Poem

The meaning of water falling on leaves
is not the meaning of leaves falling on water.

Between getting life fully
and giving it fully
a full death mark is there.

The remaining poem
is not written with words,
drawing the full existence like a full stop
it is left anywhere...

□

रवींद्र नाथ टैगोर
अनु. बी.एस. त्यागी

वागीशा

ओ भाषा की देवी!
मूरत तुम्हारी उकेरी है मैंने
इस एकाकी आँगन में।
अधूरे, निःशब्द
बिखरे हुए
आशाहीन मिट्टी के ढेले
टुकुर-टुकुर देखते चरणों को तुम्हारी गर्वित मूरत के
बस ये पड़े हैं
पता नहीं इन्हें क्यों पड़े हैं?
दया के पात्र इनसे भी अधिक हैं वे
जिन्हें मिल गया था आकार
किंतु साथ समय के
खो दिया अर्थ अपना उन्होंने।
निमंत्रण दिया था कहाँ तुम्हें?
नहीं दे सकते थे उत्तर
कौन-सा सपना बुनने के लिए
कर्ज धूल का ढोते रहे वे
और आ पहुँचे दरवाजे पर मनुज के?

किस स्वर्ग से खोया
ये चित्र उर्वशी का
नश्वर कैन्वस पर
उकेरना चाहता है कवि?
तुम्हें बुलाना था इसीलिए
रखा गया था सावधानीपूर्वक प्रदर्शनी में
फिर भुला दिया गया एक दिन।
बने हो तुम आदि मिट्टी से
दिव्यता को लिए
निःशब्द रथ में दौड़ रहे
उस अज्ञात की ओर।
ये अच्छा है
अपंग पड़ी है थकी हुई प्रसिद्धि आज
ये अपमान रोज के
चल रहे हैं कदमों के पीछे समय के
और व्यवधान डालते यात्रा में
घृणित, अपमानित तुम –
जब पुनः मिल जाओगे मिट्टी में
शांति मिल जाएगी तुम्हें अंत में।

□

ए.जे. थॉमस
अनु. अनीता पंडित

उड़ान

गाड़ियों से बचकर निकलते हुए
सड़क पार कर
बस या मेट्रो पर चढ़ना
उतरने के बाद
फिर से सड़क पार करना
सीढ़ियों पर चढ़ना
सबसे ऊपरी मंजिल तक जाना
उड़ती हुई चिड़िया किसी अवरोध से
नहीं रुकती प्रायः
और न ही कोई दूसरी चिड़िया या वस्तु
बाधित करती है
किसी चिड़िया की उड़ान को
इसी प्रकार कैसे मिलेंगे हमें
पचासवर्षीय, अस्सीवर्षीय, नब्बेवर्षीय और
यहाँ तक कि सौवर्षीय लोग
एक ही शहर में।

□

डॉ. हरिभजन सिंह
अनु. डॉ. नरेंद्र मोहन शर्मा

मेरी तस्वीर

मेरी तस्वीर
जो मेरी समझकर तुम ने लौटा दी है
उसे मैंने कई बार उलटा-पलटा
पर उसमें मुझे
अपना कुछ भी नहीं मिला
लौटाई हुई तस्वीर के सम्मुख
मुझे महसूस होता है कि जैसे
मैं अपने आपसे लौट आया हूँ
पिंजरों में बंद एक सिफर जैसा
भटकता हूँ शून्य में
मौन, बिन कोई नहीं साथी के
रास्ता कोई नहीं
कि अपने पास चला आऊँ
दिशा निर्वाण सी
बेमानी लगती मुझे है
मेरे लिए न कोई पूर्व है न पश्चिम —
जहाँ मैं उदित-अस्त होऊँ
समय की लचकीली लीक
किसी ने तोड़ दी है
मेरी तस्वीर
मेरी समझकर तुमने लौटा दी है
लौटी हुई तस्वीर के सम्मुख
मैं पल भर के लिए
पहचानता हूँ जब स्वयं को
तो मैं सद्य प्रसव की वेदना से बड़ कर

कुछ नहीं होता
मैं अपने आपका वायदा मात्र होता हूँ
पर यह वायदा भी मेरे पास नहीं होता
यह बाँछा है या कि भ्रम है या कि भय है
उस माँ का
जिसने अनिच्छा से मुझे जन्मा
और
जिसका वरण मेरे लिए भी इच्छित नहीं था
आज मैं जीवित नहीं हूँ
जीऊँगा कल
मेरी जन्मदात्री जब मुझे
वासना के जाने-पहचाने रास्ते पर
चलने के लिए प्रेरित करेगी
मैं फिर एक जन्म को
तस्वीर बनाकर भेंट कर दूँगा
और, पुनः कोई और
उस जन्म को निरर्थक समझकर
लौटा देगी
जिंदगी जीने से पहले ही
किसी ने
कुपथ पर मरण के अभिशाप को झेलने की
निरूपाय आदत डाल दी है
मेरी तस्वीर मेरी समझकर तुमने लौटा दी है।

□

जगतार पपीहा
अनु. : राजकमल चौधरी

लुधियाने की लड़की

लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

अकेली इंडिया गेट तक घूमने कैसे जाए
अकेली बाजार से साग-सब्जियाँ कैसे लाए
अकेली सारा दिन कैसे रहे एक कमरे में बंद
अकेली कैसे ढोलक पर गीत गाए
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है।

शैहर दस बजे रात को दफ्तर से आता है
अक्सर ही साथ में दोस्त लाता है
करता रहता है मोटी किताबों की भारी-भारी बातें
इतना कूड़ा दिमाग में कैसे समाता है
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है।

इतनी तेजी से कहाँ भागते हैं सड़कों पर इतने लोग
जीवन में मिलता नहीं, कहीं रुकने का संयोग
टैक्सी के नीचे एक बूढ़ी औरत दब जाती है
मौत ही दवा है, इतना कठिन है शहर का रोग
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है।

आओ, आज घर में बैठो, कुछ बात करें
टप्पे गा-गाकर आँगन में फूलों की बरसात करें
लोग पागल कहेंगे, कहें, अपना क्या बिगड़ता है
गीतों की शादी रचाए, प्यार की बारात करें
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है।

(सौजन्य : डॉ. देवशंकर नवीन)



दर्शन सिंह आवारा
अनु. : राजकमल चौधरी

अजनबी

यहीं की मिट्टी (या, सिमेंट?) मेरी माँ है
यहीं के पार्कों के पेड़-पौधे मेरे साथ बढ़े हैं
यहीं के फूल (या पेट्रोल की गंध?) मेरी साँसों में
यहीं की सड़के मेरी हमसफर
यहीं की किसी लड़की के लिए
मैंने एक गीत लिखना चाहा था।

इसी घर की दीवारों मेरी जुवान समझती हैं
इसी घर का शीशा मेरा चेहरा पहचानता है
इसी घर के दरवाजे मेरे लिए बंद नहीं होते हैं
इसी घर में मेरी किताबें
इसी घर में मेरी नींद
और नींद में मैंने अपने दिल
सपनों का एक जाल बुनना चाहा था।

यहीं की मिट्टी में आग जलती है
यहीं के पेड़-पौधों की धरती निगल गई है
यहीं की कोई लड़की अब बेवा है।
और, गीतों की कब्र पर रो रही है।

इसी घर का शीशा अब टूट गया है
इसी घर की किताबें फुटपाथों पर बिकती हैं
इसी घर में मुझे नींद नहीं आती है।
और, मेरे सपनों की तस्वीर खो गई है।

मैं अपनी ही दुनिया में अजनबी हूँ।
(सौजन्य : डॉ. देवशंकर नवीन)

□

नागार्जुन
अनु. : डॉ. देवशंकर नवीन

ताड़ का गाछ

विकट प्रांतर मध्य
अकेला खड़ा है ताड़ का गाछ
पूरी तर्जनी बना खुद
विधाता को ललकार रहा है
कुछ भी नहीं समझता किसी को अपने समक्ष
सारा कुछ उसके लिए है झूठ!

जेठ की धूप!
झमाझम बरसता मेघ मूसलाधार
माघ की ठंड
चैत का ताप
सारा कुछ उसके लिए है झूठ!

कितनी भी ताकत लगा ले कोई
चाहे तो बुला ले बाप-दादों आकाओं को
बाल भी बाँका उसका
कर न सकेगा मगर कोई!



नागार्जुन

अनु. : डॉ. देवशंकर नवीन

इस घर पर बैठा था गिद्ध

इस घर में लगा दीजिए आग
अपने ही हाथों लगा दीजिए इसमें
दियासलाई की तीली
भस्म हो जाने दीजिए इसे
निरर्थक मोह मत रखिए छप्पर का
निरर्थक मोह मत रखिए
खंभों का, शहतीरों का, बीमों का
गिरा दीजिए
अपने ही हाथों इस घर की दीवार
नामोनिशान मिटा दीजिए इसका
कल, परसों और चौथे दिन
इस छप्पर की मुंडेर पर बैठा था गिद्ध
एक नहीं
दो नहीं
पूरी कतार थी उनकी
कुशल चाहें अपना
कुशल चाहें परिवार का
कुशल चाहें गाँव और इलाके का
तो अपने ही हाथों आग लगा दीजिए
इस घर में आग

यह घर अपवित्र हो गया
इसके चारों छप्परों की छाँह
हो गई अशुभ
अमांगलिक हो गई
इसी पर बैठे थे करीब चार गिद्ध
न मालूम उन्होंने
किन-किन जीव-जंतुओं के सड़े
और विकृत माँस का
किया था भक्षण उस दिन
न मालूम कधिर से आए थे।
उड़ गए किधर, न मालूम

पर बहुत देर तक
बैठे थे आपके घर पर चार गिद्ध
आपने भी तो देखा ही होगा
अब तो न कीजिए विलंब
अपने ही हाथों लगा दीजिए इस घर में
दियासलाई की तीली!

□

डॉ. शिखामणि
अनु. डॉ. एम. रंगय्या

जीवित अक्षर

सैर-सपाटे पर जाते समय,
मैं
उस जेब में कुछ
इस जेब में कुछ
अक्षरों को भर लेता हूँ।
छोटा बालक पाठशाला जाते समय
जेब में मटर के दानों को
ले जाने के समान।
दो पग बढ़ता हूँ कि नहीं
अनजाने ही
हाथ मेरा जेब में
पहुँच जाता है।
अक्षर क्या कम बला के हैं
वे रविवार के
बच्चों के समान
बेहद शोर मचाने लगते हैं।
आँखें मूँदे
हाथ आए एक-एक अक्षर को
मुँह के हवाले करता हूँ।

कुछ नरम पड़कर
पिस जाते हैं
सरल अक्षरों-सा,
पर कुछ
फट्-फट् आवाज़ करने लगते हैं
परुष अक्षरों-सा।
और कई अक्षर
बच जाते हैं।
इतने में डकार के रूप में
कविता प्रकट होती है।
उस जून
पेट भरा जैसा आभास होता है।
आते-आते
अन्य अक्षरों को
माला में पिरोकर
एक मूक बाल भिखारिन के
गले में डाल आता हूँ।
अगले दिन
जाकर देखूँ तो
वे ही अक्षर
उसके मुँह से
“भूख लगी है माँ
पाँच पैसे दान में दीजिए।”
बातों में बदलकर
मुझसे पहले
मुझसे महान रूप से
किसी के कहे
मेरी बेकार कविता से बढ़कर
वे बातें ही
महान प्रतीत होती हैं।

□

डॉ. शिखामणि
अनु. : एम. रंगय्या

घर बदलना होगा

जितनी आसानी से हम
वस्त्र बदलते हैं
जितनी सरलता से हम
अपने विचारों को बदलते हैं
जितनी सुगमता से
अनायास ही मन को बदलते हैं
उसी प्रकार हमें
घर बदलना होगा।
घर बदलना शारीरिक ही नहीं
मानसिक भी होता है।
घर बदलना आर्थिक ही नहीं
सामाजिक भी है
कमरे और दीवारों के साथ
उसके वातावरण के आदी
बनी जगह ही हैं न!
दिल के कमरों में
जिस प्रकार रक्त का प्रवाह
सहज रूप से गतिशील होता है

उसी प्रकार उस स्थान के
कमरों में हमारा विचरण हुआ था न!
नथुनों में हवा के
आने-जाने की जगह है न!
जिस दिन किराया देने
जाते हैं, तभी वह हमें
किराए का मकान-सा लगता है न!
फिर भी घर बदलना होगा!
तिनके को भी
ढंग से सजा कर रखने वाली घरवाली
इसके पूर्व दर्पण जहाँ था
उसके ठीक सामने
लगातार किंकर्तव्यविमूढ़ हो
खड़ी रह जाती है
अपने साथ नहीं ले जाने वाले
काजल के निशानों के लिए।

□

इग्नेजियो सिलोने

अनु. : राजकमल चौधरी

सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर

हम अपने बगीचों में उगाते हैं अंगूर की लताएँ, और बनाते हैं संशयहीन
कॉनियक की रक्तवर्णी मदिरा —
यह लताएँ, और यह प्रकृति-सौंदर्य, और यह नशीला उत्पाद प्रतिपल-प्रतिक्षण
हमें कौन देता है?

हम मयूरपंखी नौकाएँ लेकर सागर-विहार के लिए बल देते हैं अनायास
हर आलस्यपूर्ण लहर को बना देते हैं एक मधुर गीत —
यह स्वच्छंदता, और यौवन का यह सहज-निश्चल आनंद
हमें कौन देता है?

हम जीविका-व्यवसाय के लिए करते रहते हैं अनजाने द्वीप-देशों का भ्रमण
हमारे परिवार को सुरक्षा, हमारी प्रेयसी को सांत्वना
कौन देता है?

हम कहीं भी हों, किसी भी ऐश्वर्य या पीड़ा की परिस्थिति में हों संश्लिष्ट
किसे छन भर भी भूल नहीं पाते हैं?
किसकी एक पुकार से वापस चले आते हैं?
हमारे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है, प्रथम और अंतिम उत्तर है :
हमारी यह पितृभूमि, हमारी यह मातृभूमि।

(सौजन्य : डॉ. देवशंकर नवीन)



तुशिको यामाज़ाकी
अनु. : राजकमल चौधरी

नया उपवन

जब ज्वालाओं में भस्म हो गया सारा उपवन
महानिशा में लगा गूँजने केवल कोलाहल, क्रंदन
तब हमने समझा फूलों का, उपवन का, जीवन का, प्राणों का मूल्य
अपनी धरती से तब बाँधा प्राणों का बंधन।

जब ज्वालाओं में भस्म हो गया सारा उपवन
हम लगे बनाने फिर से अपना टूटा घर-आँगन;

चारों ओर कठिन सागर है, मध्य एक दीपक जलता है
सूर्योदय का देश हमारा, ज्वालामुखियों में पलता है
नए-नए घर, नए शहर, फैक्टरियाँ, स्कूल, स्टेडियम बनते जाते हैं
समय का बर्फ़ बहुत तेजी से गलता है।

चारों ओर कठिन सागर है, मध्य एक दीपक जलता है,
ज्योतिर्मय संसार हमारा, अँधियारे को छलता है!

(सौजन्य : डॉ. देवशंकर नवीन)



जेम्स कर्कप
अनु. : विनोद शर्मा

कोई आदमी परदेसी नहीं होता

याद रखना न कोई आदमी अजनबी होता है और न कोई देश, परदेस
सभी वर्दियों के नीचे साँस लेती है एक ही देह
जैसे हमारी; जिस जमीन पर हमारे भाई चलते हैं
धरती है वह, इसकी तरह, जिसमें हम सब लेटेंगे, पड़े रहेंगे

वे भी धूप, हवा और पानी के बारे में जानते हैं
और शांति के दौर में फसलों द्वारा भोजन पाकर संतुष्ट हो जाते हैं
और युद्ध के लंबे शीतकाल में रहते हैं भूख से पीड़ित
उनके हाथ हमारे हैं और उनकी रेखाओं में हम पढ़ सकते हैं
'कठिनाई से आगे बढ़ना', ठीक हमारी तरह

याद रखना उनकी भी आँखें हैं, हमारी जैसी, जो जागती हैं
या सोती हैं और उनकी ताकत जो प्यार से ही जीती जा सकती है
हर देश में सार्वजनिक जीवन होता है
जिसे सभी पहचान और समझ सकते हैं

यह मनुष्य की धरती ही तो है जिसे हम बिगाड़ते हैं
आग और धूल के हमारे नरक, सर्वत्र व्याप्त हमारी अपनी ही
हवा की पवित्रता को नष्ट कर देते हैं
याद रखना, नहीं होता कोई आदमी, परदेसी और कोई देश, परदेस।

□

एस. कासिम्बी

अनुवाद में

अनुवाद में

एक आत्मा के होते प्रतिबिंब अनेक
एक विचार के होते ग्राहक अनेक
एक मत से होते परिचित दिल अनेक
एक संदेश से होते प्रेरित मन अनेक

एक भाषा में झाँकते पाठक अनेक
एक सभ्यता का पता लगाते लोग अनेक
एक प्रांत में सैर करते यात्री अनेक
एक प्रकृति से प्रभावित होते दर्शक अनेक

एक अनुभूति का स्वाद लेते हृदय अनेक
एक आनंद को बाँट लेते उर अनेक
एक सुर में आकर मिलते स्वर अनेक
एक अमृत में डुबकियाँ लेते चित्त अनेक

सबमें एकरसता कायम करने का यही रास्ता है।
सबको एकसूत्रता में बाँध देने का सही वास्ता है।
सत्य है एकता को सजीव रखने का यही उचित कदम है।
सारी वसुधा को एक परिवार बनाने का उत्तम यही उपाय है।

□

कृष्ण गोपाल अग्रवाल

(1) अनुवाद के सोपान

सागर किनारे बैठना,
अनुवाद का पहला चरण।
उसमें उतरना, डूबना,
अनुवाद का दूजा चरण।
आत्मसात कर जल-मूल सब,
अनुवाद का तीजा चरण।
तादात्म्य सांगोपांग जब,
तब संतरण अंतिम चरण।।

□

कृष्ण गोपाल अग्रवाल

(2) अनुवाद : एक मूल्यांकन

अनुवाद है भाषांतरण, अनुवाद ही रूपांतरण।	अनुवाद नव अन्वेषणा, अनुवाद हर संवेदना।
अनुवाद ये टीकाएँ सब, अनुवाद सब कुछ अंतरण।।	हर कृति है अनुकृति, हर अनुकृति अनुवाद है।
अनुवाद पूरी जिंदगी, अनुवाद ही एक आचरण।	हर सृजन है अनुसृजन, हर अनुसृजन अनुवाद है।
अनुवाद एक सेतु है, अनुभूति का स्पंदन।।	संस्कृतियों का सम्मिलन, भाषाओं का संक्रमण।
प्रगामी मन की युक्तियाँ, अनुवाद ये सब सूक्तियाँ	अनुवाद प्रक्रिया प्रजनन, अनुगमन, फिर संचलन।
अनुवाद यह संप्रेषणा, अनुवाद ही संप्रेषणा।।	अनुवाद का यह आकलन, अनुवाद : एक मूल्यांकन।।

□

डॉ. पूरनचंद टंडन

शब्द-कहर

बेघर शब्दों को
बियावान जंगलों में
तपना और तचना है।
आँधी-तूफान के
साए में बार-बार
अटकना-भटकना है।

सागर के ज्वार में
श्वासित व्यापार में
शब्द टूट जाते हैं।
कोहरा-सा छाता है
'साधने' के फेर में भाव छूट जाता है।

शब्दों की धार पर
चलना 'शमशीर'-सा
यात्रा अनंत है।
रिश्ते बनाने का
अद्भुत प्रयास ये
खुला दिगंत है।

'शब्द-कहारों' के
काँधे पे बैठकर
निकलती है 'वेदना'।
सूत्रों में बाँधने को,
वैश्विक हृदय से
'चक्रव्यूह' है भेदना।

□

डॉ. पूरनचंद टंडन

‘सेतु’ रिश्तों के

अभ्यास,
सान के पत्थर पर
बार-बार घिसने का,
‘लक्ष्य’ और ‘स्रोत’
भाषा के पिसने का
बनता है ‘साधक’।

नियति,
‘रीति’ और ‘रिवाज़ों’ की,
‘सांस्कृतिक दरवाज़ों’ की,
चौखट पर बैठ कर
शब्दों से ‘जूझना’
और अर्थों को ‘बूझना’।

मुहावरे,
भाषा की ताकत से
रास्ते को रोकते हैं,
‘प्रकृति’ और ‘शैली’ के
‘बैरियर’ डालकर
बार-बार टोकते हैं।

परिणाम,
रिश्तों के घोल से
‘सीमेंट’ जमाते हैं
शब्द और अर्थों के
‘अंतर्संबंधों’ से
‘सेतु’ बनाते हैं।

□

डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित

पद्यानुवाद : विविध भंगिमाएँ

- (1) Soft as the dew from heave'n desceneds,
His gentle accents fell:
The modest stranger lowly bends,
And follows to the cell.

—ऑलिवर गोल्ड स्मिथ

स्वच्छंद, मृदुल, रमणीय, स्वर्ण के हिमकण के से,
उसके मुख से सज्जनतामय जो स्वर निकले,
सरल लजीला पथिक बंध गया प्रेम बंध में,
गया उसी के पीछे-पीछे गहन विजन में।

—पंडित गिरधर शर्मा 'नवरत्न'

- (2) So flocked.
Kapilavastu's maidens to the gate,
Each with her dark hair newly smoothed and bound,
Eyelashes lustered with the soorma-stick,
Fresh-bathed and scented; all in shawls and cloths.
Of gayest; slender hands and feet new-stained.
With crimson, and the tilka-spots stamped bright.

—सर एडविन ऑर्नल्ड, लाइट ऑफ एशिया

नृपद्वार कुमारि चलीं पुर की, अंगराग सुगंध उड़ै गहरी,
सजि भूषण अंबर रंग बिरंग, उमंगन सों मन मौंहि भरी।
कवरीन में मंजु प्रसून गुछे, दृगकोरन काजर लीक परी,
सित भाल पै रोजनबिंदु लसै, पग जावक रेख रची उछरी।

—आचार्य रामचंद्र शुक्ल, बुद्ध चरित

- (3) Ah, make the most of what we yet may spend,
Before we too into the Dust descend;

Dust into Dust, and under Dust, to lie,
Sans Wine, sans Song, sans Singer, and sans End!

—एडवर्ड फिट्ज्जैराल्ड, रुबाइयत उमर खैयाम
हाथ लगे सो मौज लूट लो, प्रियतम, यौवन में दिन तीन
हाय! अंत में तो होना है सब ही को अनंत में लीन।
हाय! अंत में तो क्या जाने कहाँ पड़े होंगे खैयाम,
खुशहीन, संगीत-हीन, संगिनी-हीन और अंत-विहीन।

—रघुवंशलाल गुप्त, उमर खैयाम की रुबाइयाँ
अरे, अब भी जो कुछ है शेष भोग वह सकते हैं स्वच्छंद,
राख मैं मिल जाने के पूर्व क्यों न कर लें जी भर आनंद,
गड़ेंगे जब हम होकर राख, राख में, तब फिर कहाँ बसंत,
कहाँ स्वरकार, सुरा, संगीत, कहाँ इस सूनेपन का अंत!

—डॉ. हरिवंशराय बच्चन, खैयाम की मधुशाला

- (4) And full-grown lambs loud bleat from hilly bourn;
Hedge-crickets sing; and now with treble soft
The red-breast whistles from a garden-croft;
And gathering swallows twitter in the skies.

—जॉन कीट्स

मिभियाते हैं, पूर्ण-पुषित मेमने शैल-सरिता से,
झाऊ-झींगुर के झंकृत-खर बगिया की क्यारी से,
कोमल मंथर उठती है अब ललमुखियाँ की सीटी
औ मंडराती हुई लवाएँ नभ में करतीं टीं-टीं।

—यतेंद्र कुमार

- (5) The city now doth like a garment wear
The beauty of the morning; silent, bare,
Ships, towers, domes, theatres and temples lie
Open unto the fields, and to the sky, --
All bright and glittering in the smokeless air.

—वर्ड्सवर्थ

बाल सूर्य की शांत-स्निग्ध निर्मल आभा का
पहना है कौशेय वसन सा शांत नगर ने,
वे गुंबद, मीनार नाट्यगृह औ गिरजाघर,
फैले हैं, विस्तीर्ण क्षेत्र में, दूर क्षितिज तक
चमक रहे हैं आज सभी निर्धूम वायु में।

—प्रो. नगेंद्र

- (6) Doth God exact day-labour light dewied

I fondly ask. But patience to prevent
That murmur soon supplies

—मिल्टन

तो मेरा अविवेक प्रश्न करता है मुझसे,
दृष्टिहीन जब किया मुझे मेरे स्रष्टा ने,
फिर क्यों आशा करता है मुझसे अर्चन की,
किंतु तभी मेरा विवेक जाग्रत हो कहता

—प्रो. नगेंद्र

- (7) Even today, none in the world
is able to describe my beloved properly.
She is like a lovely beautiful women
ever created by the creator God.
Only that man and no one else --
Who has seen that paragon of beauty
as well as my beloved
might be able to do so.

—डॉ. कृष्ण कुमार, चौर पंचाशिका

आज भी, कोई नहीं, जो कर सके --
रूपांकन मेरी प्रिया का ।
है शची सी, उर्वशी सी या अतीन्द्रिय रूपसी सी
पूर्व इसके जो कभी शायद विधाता ने रची थी ।
धन्य होंगे नेत्र, वे जो देख पाए --
रूप की आदर्श छवि और सौंदर्य मेरी प्रिया का
सफल हो सकते वही, न अन्य कोई
कर सके रूपांकन जो मम प्रिया का ।।

—डॉ. दिनेश दीक्षित

- (8) The fountains mingle with the river
And the rivers with the ocean,
The winds of heaven mix for ever
With a sweet emotion;
Nothing in the world is single;
All things by a law divine
In one spirit meet and mingle.
Why not I with thine?—

See the mountains kiss high heaven
And the waves clasp one another;

No sister-flower would be forgiven
If it disdained its brother;
And the sunlight clasps the earth
And the moonbeams kiss the sea:
What is all this sweet work worth
If thou kiss not me?

—शैली

शिराएँ पर्वतों को चूमती हैं, मृदुल मुख शशि का
उदधि की बीचियाँ करती हैं आलिंगन तरंगों का ।
बजाता प्रेम की वंशी, उड़ता गंध चहुँ दिसि में,
बहे स्वर्गिक पवन मंथर जगाता मदन मन-मन में ।
प्रभा दिनकर की चूमे है सुनहरी अंक धरणी का
शशि की रश्मियाँ चुंबन करें देखो समंदर का ।
मगर क्या लाभ इन सबके प्रकंपित हृदय भावों का
अगर तुम भी न लो निज अंक में मम अंक शरमाकर ।

—डॉ. दिनेश दीक्षित

- (9) हिम गिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की शीतल छाँह
एक पुरुष, भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह ।

—जयशंकर प्रसाद

Upon the Himlaya's losty peak
In the cool shade of an overhanging reliff.
A person sat with wet eyes surveyed
The flowing current of the flood of Doom

—बी.एल. साहनी

□

डॉ. विनीता कुमारी

**विदुर नीति के कुछ संस्कृत श्लोकों का
हिंदी काव्यानुवाद**

- संस्कृत श्लोक :** क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः रतम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान् नापकर्षन्ति स वै पंडित उच्यते ॥ 1/22
- काव्यानुवाद :** क्रोध, हर्ष, अहंकार और मान, जिसे कभी लुभा न पाए ।
लज्जा, उद्धतता से रहे विलग, वह पंडित कहलाए ॥
- संस्कृत श्लोक :** यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पंडित उच्यते ॥ 1/24
- काव्यानुवाद :** शीत, उष्ण, भय, रति, कृत्य में विघ्न न बनने पाए ।
समृद्धि रहे या जाए, सदा समभाव पंडित कहलाए ॥
- संस्कृत श्लोक :** निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पंडित उच्यते ॥ 1/29
- काव्यानुवाद :** कैसी भी बाधाएँ क्यों न आएँ, आरंभ कर्म छोड़ न पाए ।
जाने दे न व्यर्थ समय को, आत्मसंयमी पंडित कहलाए ॥
- संस्कृत श्लोक :** न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते ।
गाङ्गो हृद इवाक्षोभ्यो यः स पंडित उच्यते ॥ 1/31
- काव्यानुवाद :** सम्मान में जो न अति हरषाए, अपमान में जो न अति गरमाए ।
क्षोभरहित जो रहे गंगाहृद सम, वह पंडित कहलाए ॥

□

बशीर अतहर
अनु. : शिवन कृष्ण रैणा

बाँटता जा

बाँट दिया तूने नभ को
इस बियावान को भी बाँट दिया,
बाँट दिया खुदा को
इन मुल्कों को भी बाँट दिया ।

बाँट दी तुमने मेरी हरीतिमा
छायादार पेड़ों को भी बाँट दिया,
बाँट दी हमारी बहुमूल्य रिवायतें
हमारे मूल्यवान बंधनों को भी बाँट दिया ।

बाँट दिया तुमने पानी को
हवा को भी बाँट दिया,
बाँट दिया सुनहरे अतीत को
हमारे वर्तमान को भी बाँट दिया ।

बाँट दिया इंसान को
उसकी इंसानियत को भी बाँट दिया,
बाँट दिया आत्मा को
हमारे आत्म-दर्शन को भी बाँट दिया ।

बाँट दिया तुमने प्यार अनमोल --
हमारी माताओं का,
बाँट दिया प्यार बहनों का
भैया-राजाओं का भी प्यार बाँट दिया ।

बाँटता जा
जब इस सबसे तुम थक जाओ
तब बाँट के दिखाना
मेरी धरती माँ को, मेरी धरती माँ को ।

□

शेक्सपियर

अनु. : शमशेर बहादुर सिंह

शिशिर

हिम बेलि-भार हो झुका हुआ भीतों पर;
जब फूँक-फूँक मुट्टी गर्माते फक्कड़;
जब भरी दुहानी घर आती हो जमकर;
औसारे में तापे जाते हों लक्कड़;
ओला जब गात्र, पंथ हिम से बेडौल; --
तब स्तब्ध रात्रि में उल्लू कर्कश बोल-बोल हँसता है!
बाहर कर ठट्टा-सा यह विहर्ष राग!
तब घर में छुँकता गर्म तेल का साग!
जब तुमुल शोर कर बहता झंझावत;
पूजा मुहुर्त में दमा जोर कर जाता;
जब सोते खग हिम के वन में चुपचाप;
जब भाई के नयनों पर नज़ला आता;
या कोई करता है बड़ियों का झोल;
तब स्तब्ध रात्रि में उल्लू कर्कश बोल-बोल हँसता है!
बाहर का ठट्टा-सा यह विहर्ष-राग!
तब घर में छुँकता गर्म तेल का साग!

□

वासेल मेकारत
अनु. : अमृता प्रीतम

एक नक्शा

कैफे की एक मेज-पत्थर की शिला ठंडी और मटमैली
मेरी जिंदगी का प्रतीक।
वहाँ बरांडी का एक गिलास लेते हुए
वह देखता है --
कुछ कतरे गिलास से दुलक कर
मेज पर गिरे हैं --
और उसका तस्सवुर -- उन कतरों में उतरता है।
वह आदमी -- जो कैफे में दो घूँट बरांडी लेने आया है,
उसकी एक अंगुली उन कतरों में डूब जाती है
और उसकी कल्पना जमीन पर उतरती है
और कैफे का मेज -- एक जमीन बनती है
और बरांडी में डुबी हुई अंगुली
एक नक्शा बनाती है।
एक छोटा-सा घर और खिड़की में रखी एक कुर्सी
सामने एक पेड़ जिसके पत्तों से सूर्य की किरणें
खेल रही हैं -- नीचे घास में कहीं-कहीं टँगे हुए कुछ फूल
और पेड़ के पास से गुजरती हुई एक प्यारी-सी लड़की की छाया
उभरती है।
और फिर एक वाकया होता है --
बैरा आता है और मेज को पोंछ देता है
सब कुछ मिट जाता है
और वह आदमी -- खाली खाली निगाहों से
देखता हुआ -- बस इतना भर कहता है
“बैरा, बरांडी का एक गिलास और प्लीज़।”

□

लेखक मंडल

- डॉ. पूरनचंद टंडन: दिल्ली विश्वविद्यालय में हिंदी प्रोफेसर।
केदारनाथ सिंह: प्रतिष्ठित कवि एवं समालोचक।
डॉ. ओमप्रकाश सिंहल: पूर्व रीडर, हिंदी विभाग, खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।
कृष्णगोपाल अग्रवाल: पूर्व संपादक, विधि मंत्रालय, भारत सरकार।
सरला जगमोहन: प्रतिष्ठित भाषाविद् और अनुवादक।
डॉ. नीलिमा सिंह: हिंदी कवियत्री।
डॉ. कुलभूषण शर्मा: असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, वेंकटेश्वर कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय।
नॉर्वट जॉस्ट: भाषा और अनुवादविद्।
डॉ. बी.एस. त्यागी: भाषा और अनुवादविद्।
डॉ. श्रीनारायण समीर: भाषा व अनुवादविद्, निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो।
सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय': प्रख्यात हिंदी लेखक।
विनोद शर्मा: प्रख्यात कवि।
डॉ. भगत दशरथ तुकाराम: भाषा और अनुवादविद्।
राज कुमार सैनी: पूर्वनिदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो एवं अनुवादविद्।
सत्येंद्र प्रयासी: सहायक निदेशक, केंद्रीय अनुवाद ब्यूरो।
कमलिनी श. पशीने: भाषा और अनुवादविद्।
प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन: प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय।

तपन बासु: अंग्रेजी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।
रमानाथ त्रिपाठी: पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं बहुभाषाविद् ।
प्रो. चमनलाल: भारतीय भाषा विभाग, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ।
सुनीता: शोधार्थी, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ।
अशोक वाजपेयी: सुप्रसिद्ध हिंदी कवि, निबंधकार, साहित्यिक और सांस्कृतिक आलोचक ।
मोनिका ब्रोवार्चिक एवं मारिय स्काकुय पुरी: भाषा और अनुवादविद् ।
अपूर्व नारायण: कुंवर नारायण के बेटे । कवि और भौतिकी, प्रबंधन, दर्शन और विकास में रुचि ।
बी.एस. त्यागी: भाषा और अनुवादविद् ।
अनीता पंडित: साहित्यकार और अनुवादविद् ।
डॉ. नरेंद्र मोहन शर्मा: पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय ।
राजकमल चौधरी: प्रतिष्ठित साहित्यकार ।
डॉ. देवशंकर नवीन: एसोसिएट प्रोफेसर, अनुवाद प्रशिक्षण विद्यापीठ, इंगारामुवि ।
डॉ. एम. रंगय्या: भाषा और अनुवादविद् ।
एस. कासिम्बी: भाषा और अनुवादविद् ।
डॉ. दिनेश चंद्र दीक्षित: पूर्व उपनिदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार ।
डॉ. विनीता कुमारी: एसोसिएट प्रोफेसर, स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय ।
डॉ. शिवन कृष्ण रैणा: प्रतिष्ठित भाषा एवं अनुवादविद् ।
शमशेर बहादुर सिंह: हिंदी के प्रतिष्ठित कवि एवं समालोचक ।
अमृता प्रीतम: लब्धप्रतिष्ठ, लेखिका अनुवादक एवं चिंतक ।